प्रमुख जैन आचार्यों का परिचय

प्रकाशक / लेखक की अनुमति के बिना इस पुस्तक को या इसके किसी अंश को संक्षिप्त, परिवर्धित कर प्रकाशित करना या फ़िल्म आदि बनाना कानूनी अपराध है।

प्रमुख जैन आचार्यों का परिचय

डॉ. वीरसागर जैन

भारतीय ज्ञानपीठ

मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला : ग्रन्थांक 081

ISBN 978-93-87919-51-8

प्रमुख जैन आचार्यों का परिचय

(जैन-इतिहास)

प्रो. वीरसागर जैन

सहायक : डॉ. सरिता जैन

प्रकाशक : **भारतीय ज्ञानपीठ**
18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-110 003

मुद्रक : आर. के. ऑफसेट, दिल्ली-110003

आवरण : महेश्वर

© भारतीय ज्ञानपीठ

PRAMUKH JAIN ACHARYON KA PARICHAY
(Jain Itihaas)
by Prof. Veersagar Jain

Published by
Bharatiya Jnanpith
18, Institutional Area, Lodi Road, New Delhi-110 003
Ph. : 011-24698417, 24626467; 23241619 (Daryaganj)
Mob. : 9350536020; e-mail : bjnanpith@gmail.com
sales@jnanpith.net; website : www.jnanpith.net

First Edition : 2019
Price : Rs. 300

सम्पादकीय

भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा दो वर्ष पूर्व एक कृति प्रकाशित की गयी थी- 'प्रमुख जैन ग्रन्थों का परिचय' जो अत्यधिक लोकप्रिय सिद्ध हुई, क्योंकि इसमें सामान्य जनता की दृष्टि से आधुनिक भाषा-शैली में सरलतापूर्वक जैन-ग्रन्थों का सार-संक्षेप लिखा गया था।

प्रस्तुत कृति 'प्रमुख जैन आचार्यों का परिचय' भी ठीक उसी तर्ज पर तैयार की गई है। अंतर मात्र इतना है कि उसमें 'ग्रन्थों' का परिचय दिया गया था और इसमें 'ग्रन्थकारों' अर्थात् 'आचार्यों' का परिचय दिया गया है, जैसा कि इनके नाम से ही स्पष्ट है। बाकी भाषा, शैली आदि सब कुछ उसी प्रकार से सरल-सुबोध रखने की कोशिश की गयी है। हमें आशा है कि यह कृति भी जनसामान्य में समादर प्राप्त करेगी।

जैन परम्परा में अब तक असंख्य आचार्य हो चुके हैं, किन्तु इस कृति में मात्र 144 आचार्यों का ही परिचय दिया गया है, अत: इसके शीर्षक में 'प्रमुख' शब्द का प्रयोग किया गया है; किन्तु आचार्यों के चयन का आधार क्या रहा है— यह स्पष्ट करना बहुत मुश्किल है, क्योंकि चयन का अर्थ यह कदापि नहीं है कि अन्य आचार्य 'प्रमुख' या 'महत्त्वपूर्ण' नहीं रहे हैं। दरअसल, चयन का एक आधार तो यही रहा है कि अन्य अधिकांश आचार्यों का परिचय उपलब्ध ही नहीं होता अथवा कुछ मिलता भी है तो वह नाम मात्र जैसा ही है, अत: उनके विषय में कुछ भी लिखना सम्भव ही नहीं है। उन अज्ञात आचार्यों को हम मन से ही बारम्बार प्रणाम निवेदित करते हैं। जिन आचार्यों का परिचय यहाँ लिखा गया है, उनके पुण्य-स्मरण से भी हमारा तन-मन-जीवन पवित्र हुआ है, अत: उनको भी हमारा विनम्र प्रणाम है। सभी आचार्यों ने अपने पवित्र जीवन, उपदेश और साहित्य के द्वारा लोकमंगल का महान कार्य किया है।

प्रस्तुत कृति के प्रणयन के पीछे हमारा पवित्र आशय भी यही रहा है कि सभी लोग इन महान निर्ग्रन्थ दिगम्बर जैन आचार्यों के जीवन और उपदेश को समझकर अपना भी जीवन पवित्र करें।

प्रस्तुत कृति में यदि हमसे अज्ञानतावश कहीं कुछ अन्यथा लिखा गया हो तो हम हृदय से क्षमायाचना करते हैं। जैन-आचार्य-परम्परा में एक ही नाम के अनेक-अनेक

आचार्य हुए हैं, अत: उनमें भ्रम हो जाना स्वाभाविक है, पूर्व में भी अनेक विद्वानों को हुआ है, हमें भी यहाँ कहीं-न-कहीं अवश्य हुआ होगा, अत: सुधी जनों से निवेदन है कि यदि उन्हें पता चले तो वे उसकी ओर हमारा ध्यान आकर्षित करें, ताकि उसे आगामी संस्करण में ठीक किया जा सके। इसी प्रकार अन्य कहीं भी कुछ भी संशोधन इस कृति में आवश्यक प्रतीत हो तो वे हमें बताने की कृपा करें, हम उसे अवश्य ठीक करेंगे और उनका हार्दिक आभार भी प्रकट करेंगे।

प्रस्तुत कृति में 144 आचार्यों के परिचय के निमित्त से उनकी लगभग 275 कृतियों का भी संक्षिप्त परिचय आ गया है। इससे इस कृति का महत्त्व और भी अधिक बढ़ गया है। अब यह कृति विश्वविद्यालयों के 'ग्रन्थ एवं ग्रन्थकार' विषय पढ़ने वाले छात्रों के लिए भी विशेष उपयोगी बन गयी है।

प्रस्तुत कृति के प्रणयन में भारतीय ज्ञानपीठ के प्रबन्ध न्यासी साहू श्री अखिलेश जैन की बलवती प्रेरणा ही मुख्य कारण रही है, अत: वे हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं। यह समाजोपयोगी कृति उन्हीं के निमित्त से तैयार होकर प्रकाशित हो रही है।

—वीरसागर जैन

अनुक्रम

गुणधर	11	मानतुंग	47
अर्हद्बली (गुप्तिगुप्त)	13	जटासिंहनन्दी	49
धरसेन	14	सुमतिदेव	50
माघनन्दि सिद्धान्ती	16	काणभिक्षु	51
पुष्पदन्त-भूतबली	17	एलाचार्य	52
कुन्दकुन्द	19	इन्द्रनन्दि	53
उमास्वामी	22	श्रीधर	54
समन्तभद्र	23	अकलंकदेव	55
शिवकोटि	26	रविषेण	58
सिद्धसेन	27	शामकुण्डाचार्य	59
तुम्बुलूर	28	वावननन्दि मुनि	60
उच्चारण	29	कुमारनन्दी	61
विमलसूरि	30	वादीभसिंह	62
वज्रयश	31	वीरसेन	64
चिरन्तन	32	जिनसेन (हरिवंशपुराण)	66
वट्टकेर	33	जिनसेन (आदिपुराण)	67
वप्पदेव	34	गुणभद्र	69
श्रीदत्त प्रथम	35	शाकटायन (पाल्यकीर्ति)	71
श्रीदत्त द्वितीय	36	उग्रादित्य	72
देवनन्दि पूज्यपाद	37	महावीर	73
आर्यमंक्षु और नागहस्ति	40	अनन्तवीर्य	74
यतिवृषभ	41	विद्यानन्द	75
स्वामी कुमार/आचार्य कार्तिकेय	43	अज्जनन्दि (आर्यनन्दि)	78
जोइन्दु (योगीन्द्र देव)	44	अपराजितसूरि (श्रीविजय)	79
पात्रकेसरी या पात्रस्वामी	45		

अमितगति (प्रथम)	80	गणधरकीर्ति	119
अमृतचन्द्रसूरि (ठक्कुर)	81	माइल्लधवल	120
रामसेन	83	पद्मनन्दि प्रथम	121
इन्द्रनन्दि (योगीन्द्र) प्रथम	84	दुर्गदेव	122
महासेन	85	जिनचन्द्र	123
सोमदेव सूरि	86	हस्तिमल्ल	124
अनन्तकीर्ति	88	रविचन्द्र	126
हरिषेण	89	कनकनन्दि	127
देवसेन	90	वसुनन्दि प्रथम	128
मुनि रामसिंह	91	वसुनन्दि सैद्धांतिक	129
मुनि पद्मकीर्ति	92	नरेन्द्रसेन	130
वादिराजसूरि	93	लघु अनन्तवीर्य	131
दिवाकरनन्दि सिद्धान्तदेव	95	जयसेन प्रथम	132
वीरनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती	96	जयसेन द्वितीय	133
वीरनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती	97	अमरकीर्ति	134
नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती	98	माधवचन्द्र त्रैविद्य	135
माणिक्यनन्दि	100	भावसेन त्रैविद्य	136
नयनन्दि	101	अभयचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती	138
प्रभाचन्द्र	102	अजितसेन	139
अमितगति द्वितीय	104	श्रुतमुनि	140
नयसेन	106	भास्करनन्दि	141
ब्रह्मदेव सूरि	107	पद्मनन्दि	142
रामसेन	108	सकलकीर्ति	143
भट्टवोसरि	109	वर्द्धमान प्रथम	145
नरेन्द्रसेन द्वितीय	110	कल्याणकीर्ति	146
मल्लिषेण	111	विद्यानन्दि	147
शुभचन्द्र	113	शुभकीर्ति	148
पद्मनन्दि	115	यशःकीर्ति	149
पद्मप्रभमलधारी देव	116	भवनकीर्ति	150
बालचन्द्र अध्यात्मी	117	सोमकीर्ति	151
वीरनन्दि	118	अभिनवधर्मभूषण	152

ज्ञानभूषण	153	छत्रसेन	178
जिनचन्द्र	154	वर्द्धमान द्वितीय	179
ब्रह्म जिनदास	155	जिनसागर	180
शुभचन्द्र	157	सुरेन्द्रकीर्ति	181
ब्रह्म जीवन्धर	158	ललितकीर्ति	182
श्रुतसागर सूरि	159	शान्तिसागर (दक्षिण)	183
ब्रह्म नेमिदत्त	160	शान्तिसागर (छाणी)	184
टीकाकार नेमिचन्द्र	161	ज्ञानसागर	185
महानन्दि	162	कुन्थुसागर	187
गुणचन्द्र	163	देशभूषण	188
श्रुतकीर्ति	164	सूर्यसागर	189
रत्नकीर्ति	165	विद्यानन्द	190
धर्मनीति	166	विद्यासागर	192
श्रीभूषण	167	वर्धमानसागर	194
नरेन्द्रसेन	168	सन्मतिसागर	195
वादिचन्द्र	169	विरागसागर	196
विद्याभूषण	170	वसुनन्दि	197
चन्द्रकीर्ति	171	विमलसागर	198
वीरचन्द्र	172	विशुद्धसागर	199
सुमितकीर्ति	173	ज्ञानसागर	200
ब्रह्म ज्ञानसागर	175	सुनीलसागर	201
वीरचन्द्र	176	परिशिष्ट (आचार्यानुक्रमणिका)	202
सोमसेन	177	परिशिष्ट (ग्रन्थानुक्रमणिका)	205

आचार्य गुणधर

जीवन-परिचय : शास्त्र रचना करनेवाले जैन आचार्यों की परंपरा में सर्वप्रथम आचार्य गुणधर का नाम आता है। ये अपने समय के विशिष्ट ज्ञानी विद्वान् थे। ये कर्म सिद्धान्त के बहुत बड़े ज्ञाता थे।

आप सर्वप्रथम श्रुत-प्रतिष्ठापक (शास्त्रों की प्रतिष्ठा करने वाला) के रूप में जगत में प्रसिद्ध हैं। इन्हें दिगम्बर परंपरा में लिखित रूप में प्राप्त श्रुत (शास्त्रों) का प्रथम कर्ता माना जाता है।

आचार्य गुणधर को पंचम पूर्व गत 'पेज्जदोसपाहुड' और 'महाकम्म-पयडिपाहुड' का ज्ञान प्राप्त था। अर्थात् इन्हें साक्षात् तीर्थंकर की परम्परा का विशिष्ट ज्ञान प्राप्त था। तीर्थंकर के ज्ञान को इन्होंने आत्मसात् (ग्रहण) कर लिया था।

आचार्य वीरसेन ने लिखा है कि—

आचार्य गुणधर मति के धारी एवं त्रिभुवन को जाननेवाले हैं, इनके द्वारा लिखित ग्रन्थ कसायप्राभृत महासमुद्र के समान है और आचार्य गुणधर उस समुद्र के पारगामी हैं, अर्थात् उस महासमुद्र को पार करनेवाले हैं।

आचार्य गुणधर का समय विक्रम पूर्व प्रथम शताब्दी सिद्ध होता है।

रचना-परिचय : आचार्य गुणधर ने श्रुतज्ञान का दिन-प्रतिदिन लोप होते देखकर श्रुतविच्छेद के भय से और प्रवचन-वात्सल्य से प्रेरित होकर 180 गाथासूत्रों का निर्माण किया और उस विषय को स्पष्ट करने के लिए 53 गाथाओं का निर्माण किया।

1. कषायपाहुड : गुणधराचार्य ने 'कषायपाहुड', जिसका दूसरा नाम 'पेज्जदोसपाहुड' है उसकी रचना की है। 16000 पद प्रमाण कषायपाहुड के विषय को संक्षेप में 180 गाथाओं में समाहित किया है और इस विषय को स्पष्ट करने के लिए 53 विवरण-गाथाओं का भी निर्माण किया है।

'पेज्ज' शब्द का अर्थ राग है और दोस का अर्थ द्वेष है। अर्थात् यह ग्रन्थ राग और द्वेष का निरूपण करता है।

इसमें राग-द्वेष-मोह का विवेचन करने के लिए कर्मों की विभिन्न स्थितियों का चित्रण किया गया है। क्रोध-मान-माया-लोभादि कषायों की रागद्वेष में परिवर्तन सम्बन्धी विशेषताओं का विवेचन ही इस ग्रन्थ का मूल विषय है। यह ग्रन्थ सूत्रशैली में निबद्ध है। आचार्य गुणधर ने कठिन और विस्तृत विषय को अत्यन्त संक्षेप में प्रस्तुत कर सूत्रपरम्परा का आरम्भ किया है।

इस ग्रन्थ में 15 अधिकार हैं, और 180 + 53 = 233 गाथाएँ हैं।

इस ग्रन्थ में क्रोध, मान, माया और लोभ—इन चारों कषायों को विस्तार से समझाया है। इनके भेद-प्रभेद को विस्तार से समझाते हुए इनसे दूर रहने की शिक्षा दी है। जब तक आत्मा राग और द्वेष आदि कषायों से लिप्त रहेगा, तब तक शुद्ध स्वच्छ एवं धवल नहीं हो पाएगा। इस ग्रन्थ का मुख्य विषय यही है कि आत्मा शुद्ध, निर्मल, धवल है। इसे क्रोधादि कषायों से अशुद्ध नहीं करना चाहिए।

विशेष : यह ग्रन्थ करणानुयोग का विशेष ग्रन्थ है। इसमें कर्म सिद्धान्त का विशेष वर्णन है। मनोविज्ञान की दृष्टि से भी यह ग्रन्थ विशेष महत्त्वपूर्ण है। आगम और तीर्थंकर की साक्षात् वाणी समझा जानेवाला यह ग्रन्थ जैनदर्शन में अपना विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

आचार्य अर्हद्बली (गुप्तिगुप्त)

जीवन-परिचय : आचार्य गुणधर के बाद आचार्य अर्हद्बली का नाम आता है। इनका दूसरा नाम गुप्तिगुप्त भी था। इन्हें आगम के आठ अंगों (अष्टांग महानिमित) का विशिष्ट ज्ञान था और ये संघ-पालन में कुशल एवं समर्थ आचार्य थे। आप बड़े तपस्वी, श्रेष्ठ विद्वान और कुशल संघनायक के रूप में प्रसिद्ध रहे हैं। इनके समय तक मूल दिगम्बर परम्परा में प्राय: संघ-भेद प्रकट नहीं हुआ था।

आचार्य अर्हद्बली ने एक बड़े यति सम्मेलन में अनेकों मुनि-संघों का 'नन्दि', 'वीर', 'अपराजित देव' पंचस्तूप', 'सेन', 'भद्र' 'गुणधर', 'गुप्त' 'सिंह' और 'चन्द्र' आदि नामों से विभाजन कर भिन्न-भिन्न संघ स्थापित किए थे। जिससे मुनि-संघों में एकता तथा अपनत्व की भावना, धर्मवात्सल्य और प्रभावना बनी रहे। इसलिए आप 'मुनि-संघ-प्रवर्तक', कहे जाते हैं।

आपके समय से ही संघों के विविध नाम प्रचलित हुए हैं।

आचार्य धरसेन ने अपनी आयु अल्प जानकर श्रुत-संरक्षण (जिनवाणी/ ग्रन्थों की रक्षा) के भाव से एक पत्र आन्ध्र देश में स्थित आचार्य अर्हद्बली के पास भेजा था। आचार्य अर्हद्बली ने पत्र पढ़कर दो योग्य शिष्यों (पुष्पदन्त और भूतबली) को धरसेनाचार्य के पास भेजा था। आचार्य अर्हद्बली से उन दोनों मुनिराजों को आगम एवं सिद्धान्त सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त हुआ था। अत: हम कह सकते है कि आचार्य अर्हद्बली को आगम एवं सिद्धान्त सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त था। वे दोनों योग्य एवं विद्वान् मुनिराजों के दीक्षागुरु भी रहे होंगे।

प्राकृत पट्टावली के अनुसार इनका समय विक्रम संवत् 95 और वीरनिर्वाण संवत् 565 है। ये पूर्व देश में स्थित पुण्ड्रवर्धनपुर के निवासी थे। इनका साधुकाल 28 वर्ष बतलाया है।

आचार्य अर्हद्बली के द्वारा रचित कोई ग्रन्थ रचना तो प्राप्त नहीं होती है, परन्तु श्रुत-ज्ञान-संरक्षण में इनका अतुलनीय योगदान प्राप्त होता है।

आचार्य धरसेन

जीवन-परिचय : मुनिपुंगव (मुनियों में श्रेष्ठ) आचार्य धरसेन सौराष्ट्र देश के गिरिनगर की चन्द्रगुफा के निवासी थे। आप सिद्धान्त ग्रन्थों के विशेष ज्ञाता थे। उन्हें आगम सम्बन्धी ज्ञान आचार्य-परम्परा से प्राप्त हुआ था। आचार्य धरसेन अपने समय के धुरन्धर विद्वान थे।

उन्होंने प्रवचनवात्सल्य से प्रेरित होकर श्रुत-ज्ञान के संरक्षण के भाव से दक्षिणापथ के आचार्यों के पास एक पत्र भेजा। इस पत्र में उन्होंने यह इच्छा व्यक्त की कि कोई योग्य शिष्य उनके पास आकर षट्खण्डागम का अध्ययन करें। दक्षिण देश के आचार्यों ने आन्ध्रदेश से दो आचार्यों को आचार्य धरसेन के पास भेजा। इन दोनों शिष्यों ने आचार्य धरसेन के पास पहुँचकर उनकी तीन प्रदक्षिणाएँ दी और उनके चरणों में सविनय नमस्कार किया। आचार्य धरसेन ने सर्वप्रथम उन दोनों शिष्यों की परीक्षा ली और परीक्षा में उत्तीर्ण होने के पश्चात् उन्हें सिद्धान्त की शिक्षा दी। आचार्य धरसेन ने अपनी मृत्यु निकट जानकर दोनों शिष्यों को शिक्षा पूर्ण हो जाने पर शीघ्र ही अपने पास से विदा किया और कुछ समय पश्चात् समाधिपूर्वक शरीर का परित्याग कर दिया।

आचार्य धरसेन कर्मशास्त्र और सिद्धान्तशास्त्र के विशेष ज्ञाता थे। आप सफल शिक्षक और श्रेष्ठ आचार्य थे। आप अनेक शास्त्रों के ज्ञाता होने के कारण महनीय यश के धारी विद्वान थे और मन्त्र-तन्त्र आदि शास्त्रों के ज्ञाता थे। आप लेखनकला, प्रवचनकला और शिक्षणकला में भी निपुण थे। प्रश्नोत्तरशैली में शंका-समाधानपूर्वक शिक्षा देने में कुशल थे। आप महान एवं कठिन विषय को संक्षेप में प्रस्तुत करने में दक्ष थे। साथ ही पाठन, चिन्तन एवं शिष्य-उद्बोधन की कला में भी पारंगत थे।

प्राकृत पट्टावली और इन्द्रनन्दि के ग्रन्थ श्रुतावतार के आधार पर आचार्य धरसेन का समय वीरनिर्वाण संवत् 600 माना जाता है। अनेक प्रमाणों के आधार

पर आचार्य धरसेन का समय ईसवी सन् की प्रथम शताब्दी माना जाता है।

रचना-परिचय : आचार्य धरसेन द्वारा रचित ग्रन्थ है—योनिपाहुड।

योनिपाहुड : आचार्य धरसेन की एकमात्र कृति 'योनिप्राभृत (जोणीपाहुड)' है, जिसमें मन्त्र-तन्त्रादि शक्तियों का वर्णन है। यह ग्रन्थ रिसर्च इन्स्टीट्युट पूना के शास्त्रभण्डार में मौजूद है। अभी-अभी भारतीय ज्ञानपीठ से इसका प्रकाशन हो चुका है।

आचार्य माघनन्दि सिद्धान्ती

जीवन-परिचय : नन्दिसंघ की पट्टावली में अर्हद्बली के बाद माघनन्दि का उल्लेख किया है और इनका कार्यकाल 21 वर्ष बतलाया है।

माघनन्दि राग-द्वेष और मोह से रहित, श्रुत के ज्ञाता, तप और संयम से सम्पन्न एवं लोक में प्रसिद्ध थे। आप प्रसिद्ध सिद्धान्तवेदी थे।

मुनिमार्ग से च्युत हो जाने पर भी इनके श्रुतज्ञान का सदैव आदर होता रहा, अत: उन्होंने पुन: मुनिमार्ग धारण कर घोर तपस्या की।

इनके समय के बारे में कुछ भी प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं, परन्तु सम्भवत: ये द्वितीय शताब्दी के विद्वान रहे हैं।

रचना-परिचय : माघनन्दि ने अपने कुम्हार जीवन काल के समय कच्चे घड़ों पर थाप देते समय गाते हुए एक ऐतिहासिक स्तुति बनाई थी, जो 'अनेकान्त' पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी है।

आचार्य पुष्पदन्त और आचार्य भूतबली

जीवन-परिचय : आचार्य पुष्पदन्त और आचार्य भूतबली का नाम साथ-साथ ही प्राप्त होता है, पर पुष्पदन्त आचार्य को भूतबली आचार्य से ज्येष्ठ माना गया है। दोनों ही आचार्य आचार्य धरसेन के पास श्रुत (शास्त्रों) की शिक्षा प्राप्त करने गये थे।

पुष्पदन्त आचार्य का समय वीर-निर्वाण संवत् 633 के पश्चात् ईसवी सन् प्रथम-द्वितीय शताब्दी के लगभग माना जाता है। इनका समय 30 वर्ष माना जाता है।

आचार्य पुष्पदन्त का जन्मस्थान करहाट के आसपास माना जाता है। वर्तमान में सतारा जिले का करहाट नगर ही इनका जन्मस्थान माना जाता है। शिक्षा समाप्ति के पश्चात् सुन्दर दाँतों के कारण इनका नाम पुष्पदन्त पड़ा था।

आचार्य पुष्पदन्त अर्हद्बली के शिष्य थे। आचार्य अर्हद्बली ने ही पुष्पदन्त और भूतबली आचार्य को श्रुत की शिक्षा प्राप्त करने के लिए आचार्य धरसेन के पास भेजा था। उनके पास रहकर ही दोनों आचार्यों ने 'महाकर्मप्रकृति प्राभृत' की शिक्षा प्राप्त की थी। अत: इनके दीक्षागुरु अर्हद्बली और शिक्षागुरु आचार्य धरसेन हैं।

प्रतिभा : आचार्य पुष्पदन्त अपने समय के आचार्यों में अत्यन्त मान्य थे और इसीलिये वे मुनिसमिति के सभापति कहलाते थे। इन्होंने ही षट्खंडागम ग्रन्थ की रचना का कार्य आरम्भ किया था। आचार्य पुष्पदन्त प्रतिभाशाली एवं ग्रन्थ-निर्माण में निपुण थे। आचार्य पुष्पदन्त ने अपनी रचना जिनपालित को पढ़ायी और अपने को अल्प आयु समझकर गुरुभाई भूतबली को अवशिष्ट कार्य को पूर्ण करने के लिये प्रेरित किया।

आचार्य भूतबली की शारीरिक और आत्मिक ऊर्जा इतनी बढ़ी हुई थी कि उन्हें सभी उपलब्धियाँ अपने आप प्राप्त हो गयी थी। ऋद्धि और तपस्या के कारण हर प्राणी उनकी पूजा एवं प्रतिष्ठा करता था। सौम्य आकृति के साथ-साथ आपके केश अत्यन्त संयत और सुन्दर थे।

आचार्य भूतबली महाकर्मप्रकृतिप्राभृत (सिद्धान्त-ग्रन्थों) के ज्ञाता थे। इन्होंने भगवान महावीर की परम्परा से प्राप्त सिद्धान्त-ग्रन्थों के मंगलसूत्रों का संकलन किया है। आचार्य भूतबली षट्खण्डागम ग्रन्थ के कर्त्ता नहीं अपितु प्ररूपक हैं।

विशेष कथा : आचार्य भूतबली ने षट्खण्डागम ग्रन्थ की रचना पूर्ण कर उसे ग्रन्थ रूप में निबद्ध किया और ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी को ग्रन्थ की पूजा की। इसी कारण यह पंचमी श्रुतपंचमी के नाम से विख्यात हुई। तत्पश्चात् भूतबली ने उस महान ग्रन्थ षट्खण्डागम को अपने ही भाँजे जिनपालित कोपुष्पदन्त गुरु के पास भेजा। जिनपालित के हाथ में षट्खण्डागम ग्रन्थ को देखकर पुष्पदन्त गुरु ने भी श्रुत भक्ति के अनुराग से खुश होकर श्रुतपंचमी के दिन 'षट्खण्डागम ग्रन्थ
की पूजा की। उसी समय से श्रुतपंचमी पर्व लोक में प्रचलित हुआ।

रचना-परिचय : षट्खण्डागम (छक्खण्डागम) ग्रन्थ छह खंडों में विभक्त है। यह ग्रन्थ आगम के ग्रन्थों में विशेष महत्त्वपूर्ण एवं अद्भुत ग्रन्थ है। महावीर की दिव्य देशना को सुरक्षित रखने के लिए इस ग्रन्थ की रचना की गयी है। जैन शास्त्रों में महान एवं प्राचीन षट्खण्डागम और कषायपाहुड ये दो ही ग्रन्थ हैं।

षट्खण्डागम का विषय गूढ़, गम्भीर एवं महत्त्वपूर्ण है। इसमें कर्म सिद्धान्त, जीव-भाव, जीवस्थान, जीवों की गति-स्थिति आदि विषयों का वर्णन है।

आचार्य कुन्दकुन्द

जीवन-परिचय : श्रमण-कुल के गौरव आचार्य कुन्दकुन्द जैनदर्शन के प्रधान विद्वान एवं महर्षि थे। वे बड़े तपस्वी थे। जैनागम के रहस्य के विशिष्ट ज्ञाता थे। वे रत्नत्रय से पूर्ण और संयमनिष्ठ मुनि थे। उनकी प्रशान्त एवं दिगम्बर मुद्रा, सौम्य आकृति देखने से परम शान्ति का अनुभव होता था। उनका व्यक्तित्व असाधारण था। वे मोक्षमार्ग की साक्षात् प्रतिमूर्ति थे। उनकी आत्म साधना कठोर थी।

आचार्य कुन्दकुन्द जैन परम्परा के एक ऐसे सर्वमान्य आचार्य हैं, जिनके ग्रन्थों का स्वाध्याय सभी स्वाध्यायी करते हैं। भगवान महावीर की वाणी का सार और अध्यात्म का रहस्य आपने अपनी कृतियों में उद्घाटित किया है। आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थों को पढ़े बिना जैनदर्शन का हृदय समझ पाना मुश्किल ही नहीं, असम्भव है।

आपके 5 नाम प्रसिद्ध हैं : आचार्य कुन्दकुन्द, पद्मनन्दी, वक्रग्रीवाचार्य, एलाचार्य, गृद्धपिच्छाचार्य। विभिन्न नामकरण का कारण है :

1. जन्मस्थान के नाम से इन्हें कुन्दकुन्द नाम प्राप्त हुआ।
2. अधिक स्वाध्याय करने से इनकी ग्रीवा टेढ़ी हो गयी, जिसके कारण इन्हें वक्रग्रीव कहा गया।
3. जब यह विदेह क्षेत्र गए तब वहाँ की अपेक्षा इनका शरीर अति लघुकाय होने के कारण इनका नाम एलाचार्य पड़ गया।
4. एक बार इनकी मोरपंख की पिच्छिका गिर गयी तो इन्हें गृद्धपिच्छ (गिद्ध के पंखों की पिच्छिका) धारण करना पड़ा, जिसके कारण इनका नाम गृद्धपिच्छ पड़ा।

विभिन्न विद्वानों के मतानुसार आचार्य कुन्दकुन्द का समय ई. सन् प्रथम शताब्दी माना जाता है।

इनका जन्म स्थान दक्षिण भारत में तमिलनाडु में पोन्नूरमलैं के निकट

कौण्डकुन्दपुर माना जाता है। इनके पिता का नाम करमण्डु और माता का नाम श्रीमती था। इन्होंने मात्र 11 वर्ष की उम्र में दीक्षा ग्रहण की। इनके गुरु आचार्य जिनचंद्र स्वामी (अथवा आचार्य श्रुतकेवली भद्रबाहु) हैं। दूसरी सदी के पूर्वार्द्ध में, विक्रम संवत् 49 में 44 वर्ष की आयु में इन्होंने आचार्य पद ग्रहण किया और 51 वर्ष, 10 माह 15 दिन तक वे उस पद पर प्रतिष्ठित रहे। आचार्य कुन्दकुन्द की कुल आयु 95 वर्ष, 10 माह, 15 दिन मानी जाती है। आचार्यश्री की समाधि ई. पूर्व 12 में हुई।

आचार्य कुन्दकुन्द ने तत्कालीन परिस्थिति का अच्छी तरह से अवलोकन किया। दिगम्बर मूलसंघ को यथावस्थित रखने के लिए भगवान महावीर के मूल आगम पर आधारित साहित्य की रचना की। इनकी रचनाओं को परमागम कहा जाता है।

भगवान महावीर और गौतम स्वामी के बाद आचार्य कुन्दकुन्द का नाम सम्मान के साथ लिया जाता है। आपको महत्त्वपूर्ण कार्य के सम्पादन हेतु पूर्ण विनय के साथ मंगलाचरण में याद किया जाता है। यथा—

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो, जैनधर्मोऽस्तु मंगलं।।

आचार्य कुन्दकुन्द के जीवन में दो घटनायें प्रमुख हैं—

1. सम्यक् तप करने से आचार्य कुन्दकुन्द को चारण ऋद्धि विद्या की प्राप्ति हो गयी थी जिससे वे पृथ्वी से चार अंगुल ऊपर अन्तरिक्ष में चला करते थे। अत: आचार्य कुन्दकुन्द विदेह क्षेत्र गये थे और वहाँ से भगवान सीमन्धर स्वामी का उपदेश ग्रहण कर लौटे थे तथा सीमन्धर स्वामी से प्राप्त दिव्यज्ञान का श्रमणों (मुनिसंघों) को उपदेश दिया था।

2. दूसरी कथा में कहा जाता है कि गिरनार पर्वत पर हुए दिगम्बर-श्वेताम्बर वाद-विवाद में आचार्य कुन्दकुन्द को विजय प्राप्त हुई थी।

आचार्य कुन्दकुन्द की अनमोल देन अध्यात्मवाद और आत्मा का त्रैविध्य है। उनकी इस देन की उनके बाद के आचार्यों ने अपने-अपने ग्रन्थों में चर्चा की है और इन्होंने बहिरात्म अवस्था को छोड़कर अन्तरात्मा बनकर परमात्म अवस्था की प्राप्ति का उल्लेख किया है।

रचना-परिचय : आचार्य कुन्दकुन्द की निम्न कृतियाँ उपलब्ध हैं—

1. **प्रवचनसार :** यह प्राकृत भाषा का मौलिक ग्रन्थ है। इसमें 275 गाथाएँ हैं। यह ग्रन्थ तीन अधिकारों में विभक्त है, ज्ञान, ज्ञेय और चारित्र। आचार्य

कुन्दकुन्द की यह बड़ी ही महत्त्वपूर्ण कृति है। यह कृति उनकी तत्त्वज्ञता, दार्शनिकता और आचार की प्रवणता से ओत-प्रोत है। इसमें जैन तत्त्व ज्ञान का यथार्थ रूप बहुत ही सुन्दरता से प्रतिपादित है।

2. **समयप्राभृत (समयसार) :** यह सर्वोत्कृष्ट आध्यात्मिक ग्रन्थ है। यहाँ समय शब्द के दो अर्थ हैं। समस्त पदार्थ और आत्मा। इस ग्रन्थ में समस्त पदार्थों अथवा आत्मा का सार वर्णित है। यह ग्रन्थ दश अधिकारों में विभक्त है। इसमें शुद्ध आत्मतत्त्व का प्रतिपादन किया गया है। इसके विषय का प्रतिपादक ग्रन्थ अखिल वाङ्मय में दूसरा नहीं है।

3. **पञ्चास्तिकाय :** इस ग्रन्थ में कालद्रव्य से भिन्न जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश—इन पाँच अस्तिकायों का वर्णन किया गया है। यह ग्रन्थ दो अधिकारों में विभक्त है। प्रथम अधिकार में द्रव्य, गुण और पर्यायों का कथन है और द्वितीय अधिकार में नौ पदार्थों के साथ मोक्षमार्ग का निरूपण किया है। द्रव्य के स्वरूप को जानने के लिए यह ग्रन्थ बहुत उपयोगी है।

4. **नियमसार :** आध्यात्मिक दृष्टि से यह ग्रन्थ भी महत्त्वपूर्ण है। इसमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र को नियम से मोक्ष का मार्ग कहा है। इस ग्रन्थ में 12 अधिकार तथा 187 गाथाएँ हैं। इसमें निश्चयनय एवं व्यवहारनय को स्पष्ट करते हुए समझाया गया है। यह ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण और उपयोगी है।

5. **बारस-अणुवेक्खा :** इस ग्रन्थ में अध्रुव, अनित्य आदि बारह-भावनाओं का वर्णन 91 गाथाओं में किया है। संसार से वैराग्य प्राप्त करने के लिए यह ग्रन्थ बहुत महत्त्वपूर्ण है।

इन प्रमुख ग्रन्थों के अतिरिक्त भी कुछ ग्रन्थ और भक्तियाँ उपलब्ध हैं। यथा—

1. दंसणपाहुड	2. चारित्तपाहुड	3. सुत्तपाहुड
4. बोहपाहुड	5. भावपाहुड	6. मोक्खपाहुड
7. लिंगपाहुड	8. सीलपाहुड	9. रयणसार
10. सिद्ध-भत्ति	11. सुद-भत्ति	12. चारित्त-भत्ति
13. जोइ-भत्ति	14. आइरिय-भत्ति	15. णिव्वाण-भत्ति
16. पंचगुरु-भत्ति	17. थोस्सामि-भत्ति (तित्थयरभत्ति)	

आचार्य उमास्वामी (गृद्धपिच्छाचार्य)

जीवन-परिचय : आचार्य उमास्वामी का दूसरा नाम गृद्धपिच्छाचार्य भी प्रसिद्ध है। एक बार आचार्य उमास्वामी आकाशमार्ग से जा रहे थे, तभी उनकी मयूरपिच्छी गिर गयी, आचार्य प्राणियों की रक्षा में अत्यन्त सावधान थे। अतएव उन्होंने गृद्धपिच्छी (गिद्ध पक्षी के पंखों से बनी पिच्छिका) को धारण किया था। उसी समय से विद्वान लोग उन्हें गृद्धपिच्छाचार्य कहने लगे।

आचार्य उमास्वामी 40 वर्ष 8 महीने आचार्य पद पर प्रतिष्ठित रहे। उनकी आयु 84 वर्ष की थी। वे आचार्य कुन्दकुन्द के अन्वय में हुए हैं। भद्रबाहु द्वितीय, गुप्तिगुप्त, माघनन्दि, जिनचन्द्र और कुन्दकुन्दाचार्य की परम्परा में ही आचार्य उमास्वामी रहे हैं। आचार्य उमास्वामी ख्याति प्राप्त विद्वान हैं। साधुओं के अधिपति मोक्षमार्ग में उत्कृष्ट, विद्वानों द्वारा पूजनीय और जिनागम के पारगामी साधक रहे हैं।

नन्दिसंघ की पट्टावलि के अनुसार आचार्य उमास्वामी का समय ई. प्रथम शताब्दी का अन्तिम भाग या द्वितीय शताब्दी का पूर्वभाग माना जाता है।

रचना-परिचय : गृद्धपिच्छाचार्य श्री उमास्वामी की एक मात्र रचना 'तत्त्वार्थसूत्र' है। यह ग्रन्थ बहुत ही प्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण है। जैन साहित्य में यह संस्कृतभाषा का एक मौलिक आद्य (प्रथम) सूत्रग्रन्थ है। एक लघुकाय सूत्र होते हुए भी इसकी रचना प्रौढ़ और गम्भीर है। यह ग्रन्थ जैन परम्परा में सर्वत्र समान रूप से मान्य है। हिन्दुओं में जो महत्त्व गीता का, मुसलमानों में कुरान का और ईसाइयों में बाइबिल का है, वही महत्त्व जैन परम्परा में तत्त्वार्थसूत्र को प्राप्त है।

इसका श्रद्धापूर्वक पाठ करने पर एक उपवास का फल मिलता है।

यह ग्रन्थ दश अध्यायों में विभक्त है, इसमें कुल 357 सूत्र हैं। इनमें जीव, अजीव आदि सात तत्त्वों का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है।

आचार्य समन्तभद्र

जीवन-परिचय : आचार्य समन्तभद्र विक्रम सम्वत् की दूसरी शताब्दी के प्रसिद्ध तार्किक विद्वान थे। वे असाधारण प्रतिभा के धनी थे और श्रेष्ठ कवि थे।

जैन वाङ्मय में आचार्य समन्तभद्र प्रथम संस्कृत-कवि और प्रथम स्तुतिकार हैं। ये पूर्ण तेजस्वी विद्वान, प्रभावशाली दार्शनिक, महावादिविजेता और कवि के रूप में स्मरण किये गये हैं। जैन धर्म और जैन सिद्धान्त के मर्मज्ञ विद्वान होने के साथ तर्क, व्याकरण, छन्द, अलंकार, काव्य कोषादि विषयों में पूर्णतया विद्वान थे। अपनी अलौकिक प्रतिभा द्वारा इन्होंने तात्कालिक ज्ञान और विज्ञान के समस्त विषयों को आत्मसात कर लिया था। आप संस्कृत, प्राकृत आदि विभिन्न भाषाओं के पारंगत विद्वान थे।

आप ऐसे युग संस्थापक हैं, जिन्होंने जैन विद्या के क्षेत्र में एक नया कीर्तिमान स्थापित किया है। आपने 'स्याद्वाद-सिद्धान्त' की प्रतिष्ठा की है। श्रवणबेलगोला के अभिलेखों में तो इन्हें जिनशासन के प्रणेता और भद्रमूर्ति कहा गया है।

आचार्य समन्तभद्र का जन्म दक्षिण भारत में द्वितीय शताब्दी में हुआ था। इन्हें चोल राजवंश का राजकुमार माना गया था। इनका जन्म क्षत्रियवंश में हुआ और जन्मस्थान उरगपुर है। इनका जन्म नाम शान्तिवर्मा बताया जाता है। वे जैनधर्म का प्रचार करना चाहते थे, इसीलिए उन्होंने राज्य वैभव के मोह का परित्याग कर गुरु से जैन दीक्षा ले ली और तपस्या द्वारा आत्मशक्ति को बढ़ाया।

मुनि दीक्षा ग्रहण करने के कुछ समय बाद कर्मोदयवश उन्हें भस्मक व्याधि नामक रोग हो गया, जिससे दिगम्बर मुनिपद का निर्वाह करना मुश्किल था, अत: उन्होंने अपने गुरुजी से समाधिमरण की आज्ञा माँगी। परन्तु गुरु बड़े निमित्तज्ञानी थे। वे जानते थे कि इनके द्वारा भविष्य में जैनधर्म का विशेष प्रचार एवं प्रभाव होगा, अत: गुरु ने मुनि समन्तभद्र को आदेश दिया कि तुम मुनि दीक्षा छोड़कर

पहले इस रोग को शान्त करो, रोग शान्त होने पर पुन: प्रायश्चित्त लेकर मुनिदीक्षा धारण करना। गुरु की आज्ञा से मुनि समन्तभद्र मुनिमुद्रा छोड़कर कांची (कांजीवरम्) पहुँचे। वहाँ पर भद्राकृति धारण कर शिवमन्दिर में चढ़ाए हुए भोग को खाने लगे, जिससे थोड़े समय में ही उनकी भस्मक व्याधि शान्त हो गयी। धीरे-धीरे राजा को समन्तभद्र पर शंका होने लगी, तब राजा ने इनको शिवपिण्डी को प्रणाम करने का आदेश दिया। तब समन्तभद्र ने 'स्वयंभूस्तोत्र' की रचना की और आठवें तीर्थंकर की स्तुति करते हुए (चन्द्रप्रभ) भगवान की वंदना की। उसी समय पिण्डी फटकर उसमें से चन्द्रप्रभ भगवान की मूर्ति प्रकट हुई, जिससे राजा और प्रजा में जैनधर्म का प्रभाव अंकित हुआ। बाद में प्रायश्चित्त लेकर पुन: मुनि पद धारण किया और वीर शासन का प्रचार करने के लिए विविध देशों में विहार किया।

स्वामी समन्तभद्र असाधारण गुणों के प्रभाव तथा लोकहित की भावना से धर्मप्रचार के लिए विभिन्न देशों में गये, वहाँ के विद्वान उनकी वाद की घोषणाओं और उनके तत्त्विक भाषणों को चुपचाप सुन लेते थे।

आचार्य समन्तभद्र ने करहाटक पहुँचने से पहले जिन देशों तथा नगरों में विहार किया था, उनमें पाटलिपुत्र, मालवा, सिन्धु, पंजाब, कांचीपुर और विदिशा ये प्रधान देश तथा जनपद थे, जहाँ उन्होंने वाद-भेरी अर्थात् वाद-विवाद में विजय प्राप्त की थी।

आचार्य समन्तभद्र के वचनों की यह खास विशेषता थी कि उनके वचन स्याद्वादन्याय की तुला में नपे-तुले होते थे। समन्तभद्र स्वयं परीक्षा प्रधानी थे, अत: वे दूसरों को भी परीक्षा प्रधानी बनने का उपदेश देते थे। आचार्य विद्यानन्द ने उन्हें परीक्षा नेत्र से सबको देखनेवाला लिखा है। उनकी वाणी का यह प्रभाव था कि कठोर भाषण करनेवाले भी उनके समक्ष मृदुभाषी बन जाते थे।

आचार्य समन्तभद्र वर्धमान स्वामी के तीर्थ की सहस्त्रगुनी वृद्धि करनेवाले हुए हैं, अत: समन्तभद्र को श्रुतकेवलियों के समान कहा गया है।

रचना-परिचय : आचार्य समन्तभद्र ने दर्शन, सिद्धान्त एवं न्याय सम्बन्धी मान्यताओं को स्तुतिकाव्य के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। उनके द्वारा रचित ग्रन्थ निम्नलिखित हैं—

1. **वृहत् स्वयंभूस्तोत्र :** इसका अपर नाम स्वयंभूस्तोत्र अथवा चतुर्विंशति स्तोत्र भी है। इसमें भगवान ऋषभदेव से लेकर भगवान महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थंकरों की क्रमश: स्तुतियाँ हैं। इस स्तोत्र में कवि ने चौबीस तीर्थंकरों के इतिहास को सरलता से प्रस्तुत किया है। यह रचना अपूर्व एवं हृदय को प्रसन्न

करनेवाली है।

2. **स्तुतिविद्या (जिनशतक) :** इस ग्रन्थ का मूल नाम 'स्तुतिविद्या' है। इस ग्रन्थ के 'जिनशतक' और 'जिनशतकालंकार' नाम हैं। इसमें 116 पद्य हैं, जिनमें चित्रकाव्य और बन्धरचना का अपूर्व कौशल समाहित है। प्रस्तुत जिनशतक में चौबीस तीर्थंकरों की चित्रबन्धों में स्तुति की गयी है। आचार्य ने इस ग्रन्थ की रचना का मुख्य उद्देश्य समस्त पापों को जीतना बतलाया है।

3. **देवागमस्तोत्र या आप्तमीमांसा :** इस ग्रन्थ का मूलनाम देवागमस्तोत्र है, इसका दूसरा नाम आप्तमीमांसा भी है। ग्रन्थ में दश परिच्छेद और 114 कारिकाएँ हैं। स्तोत्र के रूप में तर्क और आगम परम्परा की कसौटी पर आप्त-सर्वज्ञदेव (भगवान) की मीमांसा की गयी है। आचार्य समन्तभद्र ने इस स्तोत्र में तर्क की कसौटी पर कसकर युक्ति आगम द्वारा आप्त की विवेचना की है।

4. **युक्त्यनुशासन :** प्रस्तुत ग्रन्थ का नाम युक्त्यनुशासन है। यह 64 पद्यों की एक महत्त्वपूर्ण दार्शनिक कृति है। युक्त्यनुशासन अर्थात् युक्ति, प्रत्यक्ष और आगम के विरुद्ध वस्तु की व्यवस्था करनेवाले शासन का नाम युक्त्यनुशासन है। इस ग्रन्थ में भगवान महावीर के सर्वोदय तीर्थ का महत्त्व प्रतिपादित करने के लिए उनकी स्तुति की गयी है। युक्तिपूर्वक भगवान महावीर के शासन का मण्डन और विरुद्ध मतों का खण्डन किया गया है। भगवान महावीर के तीर्थ को सर्वोदय तीर्थ कहा है, यह समस्त विपत्तियों का अन्त करनेवाला सर्वोदय तीर्थ है।

5. **रत्नकरण्डश्रावकाचार :** जीवन और आचार की व्याख्या करनेवाला, श्रावकाचार सम्बन्धी ग्रन्थों में सबसे पहला, सबसे सरल एवं प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' है। इस ग्रन्थ में 150 पद्यों तथा सात अध्यायों में विस्तारपूर्वक सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक् चारित्र का विवेचन बहुत ही सरलता से रोचक कथाओं एवं उदाहरणों द्वारा किया गया है। यह ग्रन्थ धर्मरत्न का छोटा-सा पिटारा है। इसमें श्रावक के अष्टमूलगुणों और सम्यग्दर्शन का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है। इसमें ''मोही मुनि की अपेक्षा निर्मोही श्रावक की श्रेष्ठता'' बतलाई है। बारह व्रतों, सल्लेखना एवं ग्यारह प्रतिमाओं का वर्णन बहुत सुन्दर है।

अनुपलब्ध रचनाएँ : जीवसिद्धि, तत्त्वानुशासन, प्राकृतव्याकरण, प्रमाणपदार्थ, कर्मप्राभृतटीका, गन्धहस्तिमहाभाष्य।

आचार्य शिवकोटि (शिवार्य)

जीवन-परिचय : आचार्य शिवकोटि या शिवार्य अपने समय के विशिष्ट विद्वान थे। 'आर्य' शब्द एक विशेषण है। इनका नाम शिवनन्दि, शिवगुप्त या शिवकोटि होना चाहिए।

आचार्य शिवार्य विनीत, सहिष्णु और पूर्वाचार्यों के भक्त हैं। शिवार्य पाणित-भोजी (हाथ में आहार ग्रहण करनेवाले) होने के कारण दिगम्बर परम्परानुयायी है। इनके गुरु का नाम सर्वगुप्त है।

अनेक शोध अध्ययन के बाद आचार्य शिवार्य या शिवकोटि का समय आचार्य समन्तभद्र और आचार्य पूज्यपाद के मध्य का माना जाता है। मथुरा अभिलेखों से प्राप्त संकेतों के आधार पर इनका समय ई. सन् की प्रथम शताब्दी माना जा सकता है।

रचना-परिचय : आचार्य द्वारा रचित एक ही ग्रन्थ प्राप्त होता है।

1. भगवती-आराधना : 'भगवती आराधना' या 'मूलाराधना' ग्रन्थ में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक्तप—इन चार आराधनाओं का निरूपण किया है। इस ग्रन्थ में 2166 गाथाएँ और 40 अधिकार हैं। यह ग्रन्थ इतना लोकप्रिय रहा है कि इस पर सातवीं शताब्दी से ही टीकाएँ और विवृत्तियाँ लिखी जाती रही हैं। इस ग्रन्थ में अनेक कथा-प्रसंगों का वर्णन है, जिनको संकलित करके अनेक कथाकोश रचे गये हैं। रत्नत्रय और तप के साथ आराधना का वर्णन करनेवाला यह महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें सात प्रकार के मरण का विशेष वर्णन किया गया है।

आचार्य सिद्धसेन

जीवन-परिचय : आचार्य सिद्धसेन की गणना दर्शन-प्रभावक आचार्यों में की जाती है। ये अपने समय के विशिष्ट विद्वान, वादी और कवि थे और तर्कशास्त्र में अत्यन्त निपुण थे। आचार्य सिद्धसेन के जीवनवृत्त के सम्बन्ध में 'प्रभावकचरित्र' में वर्णित है कि उज्जयिनी नगरी के कात्यायन गोत्रीय देवर्षि ब्राह्मण की देवश्री पत्नी के उदर से इनका जन्म हुआ था। ये प्रतिभाशाली और समस्त शास्त्रों में पारंगत विद्वान थे। गुरु वृद्धवादि ने इनका दीक्षानाम कुमुदचन्द्र रखा। आगे चलकर ये सिद्धसेन के नाम से प्रसिद्ध हुए। आचार्य सिद्धसेन दार्शनिक और कवि दोनों हैं। जहाँ उनका काव्यत्व उच्च कोटि का है, वहीं उनका दार्शनिक विवेचन भी गूढ़ गम्भीर है।

आचार्य सिद्धसेन का समय ईसा की पहली-दूसरी शताब्दी का माना जाता है।

रचना-परिचय : आचार्य सिद्धसेन ने दो ग्रन्थों की रचना की है—

1. **सन्मतिसूत्र :** प्राकृत भाषा में लिखित न्याय और दर्शन का यह अनूठा ग्रन्थ है। आचार्य ने नयों का विवेचन कर जैन न्याय की सुदृढ़ पद्धति का आरम्भ किया है। कथन करने की प्रक्रिया को 'नय' कहा गया है और विभिन्न दर्शनों का अन्तर्भाव विभिन्न नयों में किया है। इस ग्रन्थ में 3 काण्ड हैं :

   क. नय काण्ड में 54 गाथाएँ हैं। इसमें नय और सप्तभंगी का कथन है।

   ख. ज्ञानकाण्ड में 43 गाथाएँ हैं। इसमें केवलज्ञान और केवलदर्शन का अभेद स्थापित किया गया है।

   ग. सामान्य-विशेषकाण्ड या ज्ञेयकाण्ड में 69 गाथाएँ हैं। इसमें पर्याय और गुण में अभेद की स्थापना की गयी है।

2. **कल्याण-मन्दिर-स्तोत्र :** इस स्तोत्र में 44 पद्यों में भगवान पार्श्वनाथ की स्तुति की गयी है।

तुम्बुलूराचार्य

जीवन-परिचय : तुम्बुलूराचार्य के समय के सम्बन्ध में कोई प्रामाणिक परिचय नहीं मिलता है। प्रतीत होता है कि ये तुम्बुलूर नामक नगर के निवासी थे, अतः तुम्बुलूराचार्य कहलाए।

डॉ. हीरालाल जी ने धवला के प्रथम भाग की प्रस्तावना में इनका समय चौथी शताब्दी बतलाया है।

तुम्बुलूराचार्य ने षट्खंडागम के प्रथम पाँच खंडों पर 'चूडामणि' नाम की एक टीका लिखी थी, जिसका प्रमाण 84,000 श्लोक प्रमाण बतलाया है। छठवें खंड को छोड़कर दोनों सिद्धान्तग्रन्थों पर एक महत्त्वपूर्ण व्याख्या कन्नड़ी भाषा में बनाई थी। इनके अतिरिक्त छठवें खंड पर 7,000 श्लोक प्रमाण टीका 'पंजिका' लिखी। इन दोनों रचनाओं का प्रमाण 91,000 श्लोक प्रमाण हो जाता है।

महाधवला का जो परिचय धवलादि सिद्धान्तग्रन्थों के 'प्रशस्ति-संग्रह' में दिया गया है, उसमें इस टीका 'पंजिका' का उल्लेख भी मिलता है।

रचना-परिचय : आपके द्वारा रचित एक ही टीका प्राप्त होती है—

1. चूड़ामणि-टीका (षट्खंडागम-टीका)

उच्चारणाचार्य

जीवन-परिचय : उच्चारणाचार्य का उल्लेख कषायपाहुड की जयधवला टीका में अनेक स्थानों पर आया है। साथ ही अनेक उल्लेखों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उच्चारणाचार्य ने आचार्य यतिवृषभ द्वारा रचित 'चूर्णिसूत्रों' की विशेष उच्चारणविधि और व्याख्यान करने की विधि सबको सिखाई थी। अर्थात् चूर्णिसूत्रों का उच्चारण और व्याख्यान करने की कला उच्चारणाचार्य ने ही सबको सिखाई थी। यतिवृषभाचार्य ने अपने चूर्णिसूत्रों में जिन सुगम तथ्यों की विवरणवृत्ति नहीं लिखी है, उनका स्पष्टीकरण उच्चारणाचार्य ने किया है।

आचार्य यतिवृषभ द्वारा लिखित अर्थ का व्याख्यान करने के कारण उच्चारणाचार्य का समय यतिवृषभ आचार्य के पश्चात् का होना चाहिए। यतिवृषभ आचार्य का समय ई. सन् की द्वितीय शती है, अतएव उच्चारणाचार्य का समय भी ई. सन् की द्वितीय का अन्तिम पाद माना जा सकता है।

रचना-परिचय : उच्चारणाचार्य द्वारा लिखित कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है, परन्तु आगम-परम्परा में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। क्योंकि यतिवृषभ आचार्य के चूर्णिसूत्रों के आधार पर उच्चारणाचार्य ने अपना व्याख्यान दिया है। चूर्णिसूत्रों की उच्चारणविधि आपने ही सबको समझाई थी।

आचार्य विमलसूरि

जीवन-परिचय : प्राकृत भाषा के चरित-काव्य के रचयिता के रूप में विमलसूरि पहले आचार्य कवि हैं। आचार्य विमलसूरि ने ग्रन्थ के अन्त में अपनी प्रशस्ति दी है, उनके अनुसार आचार्य विमलसूरि आचार्य राहु के प्रशिष्य, विजय के शिष्य और 'नाइल कुल' के वंशज थे।

नाइलकुल के सम्बन्ध में मुनि कल्याणविजय का अनुमान है कि नाइलकुल, नागिलकुल अथवा नगेन्द्र कुल है। इसका अस्तित्व 12वीं शताब्दी तक प्राप्त होता है। 12वीं से 15वीं शताब्दी तक यह कुल नगेन्द्र-गच्छ के नाम से प्रसिद्ध रहा है। इस गच्छ के आचार्य एक सम्प्रदाय का अनुकरण नहीं करते थे। इनके विचार उदार रहते थे। यही कारण है कि विद्वानों ने इन्हें यापनीय संघ का अनुयायी माना है।

आचार्य विमलसूरि का समय ई. सन् चौथी शताब्दी के लगभग माना जाता है।

रचना-परिचय : आचार्य विमलसूरि की एकमात्र रचना 'पउमचरिय' मानी जाती है—

1. पउमचरिय : पउमचरिय में सम्पूर्ण रामकथा का समावेश सात अधिकारों और 118 अध्यायों में किया है।

यह ग्रन्थ दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायों में मान्य है। इस ग्रन्थ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें सभी पात्रों जैसे—रावण, कैकेयी, मन्दोदरी आदि का उदात्त चरित्र अंकित किया है।

यह प्राकृत भाषा का सर्वप्रथम चरित महाकाव्य है। इसकी भाषा महाराष्ट्रीय प्राकृत है, जिस पर यत्र-तत्र अपभ्रंश भाषा का भी प्रभाव है। भाषा में प्रवाह और सरलता है।

वज्रयश

जीवन-परिचय : 'तिलोयपण्णत्ती' ग्रन्थ में आचार्य वज्रयश का उल्लेख है और उन्हें अन्तिम प्रज्ञाश्रमण (बुद्धिमान साधु) बताया गया है।

तिलोयपण्णत्ती ग्रन्थ के अनुसार वज्रयश एक बड़े विद्वान आचार्य हुए हैं, जो प्रज्ञाश्रमण ऋद्धि के धारक थे और जिनका नामोल्लेख सर्वत्र बड़ी श्रद्धा से किया जाता है।

आचार्य वज्रयश आचार्य यतिवृषभ के पूर्ववर्ती आचार्य हैं, तभी उन्होंने अपने ग्रन्थ में आचार्य वज्रयश का उल्लेख किया है। यतिवृषभ आचार्य द्वितीय शताब्दी के विद्वान हैं अत: आचार्य वज्रयश को द्वितीय शताब्दी के पूर्ववर्ती माना जा सकता है। सम्भवत: इनका समय प्रथम शताब्दी का उत्तरार्ध रहा हो।

रचना-परिचय : आचार्य वज्रयश के द्वारा लिखित कोई भी ग्रन्थ प्राप्त नहीं होता है।

चिरन्तनाचार्य

जीवन-परिचय : चिरन्तनाचार्य का उल्लेख जयधवला टीका में प्राप्त होता है। इसमें बताया है कि चिरन्तनाचार्य का व्याख्यान प्रथम पृथ्वी के समान है अर्थात् मूलभूत कार्य है।

चिरन्तनाचार्य के लिए एक अन्य उल्लेख प्राप्त होता है, जिसमें उन्हें 'चिरन्तन व्याख्यानाचार्य' कहा गया है।

चिरन्तनाचार्य का समय आचार्य यतिवृषभ और आचार्य वप्पदेव के पूर्व का माना जाता है। सम्भवत: इनका समय द्वितीय शताब्दी रहा हो।

रचना-परिचय : आचार्य द्वारा रचित किसी भी ग्रन्थ का उल्लेख आगम में नहीं मिलता है।

आचार्य वट्टकेर

जीवन-परिचय : आचार्य वट्टकेर कुन्दकुन्दाचार्य से भिन्न हैं या अभिन्न, इस सम्बन्ध में मतभेद है। परन्तु मूलाचार ग्रन्थ का अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि वट्टकेर एक स्वतन्त्र आचार्य हैं और कुन्दकुन्दाचार्य से भिन्न हैं।

आचार्य वसुनन्दि ने मूलाचार की संस्कृत-टीका लिखी है और इस टीका की प्रशस्ति में इस ग्रन्थ के कर्त्ता का वट्टकेर, वट्टकेर्याचार्य तथा वट्टकेराचार्य के रूप में परिचय दिया है। वट्टक का अर्थ वर्तक-प्रवर्तक है, जिसकी वाणी प्रवृतिका हो—जनता को सन्मार्ग तथा सदाचार में लगाने वाली हो, उसे वट्टकेर समझना चाहिए।

आचार्य वट्टकेर के सम्बन्ध में अभी तक पट्टावलि एवं अभिलेखों में कुछ भी परिचय प्राप्त नहीं होता है, अत: उनके समय के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता है, परन्तु मूलाचार की विषयवस्तु के अध्ययन से इतना स्पष्ट है कि ये बहुत प्राचीन हैं।

रचना-परिचय : आचार्य वट्टकेर द्वारा रचित एकमात्र ग्रन्थ 'मूलाचार' है।

1. मूलाचार : इसमें मुनि के आचार (नियम एवं सिद्धान्त) का बहुत ही विस्तृत एवं सुन्दर वर्णन किया है। मुनिधर्म को जानने के लिए एक स्थान पर इससे अधिक सामग्री का मिलना कठिन है। इस ग्रन्थ में 12 अधिकार और 1252 गाथाएँ हैं। भाषा और शैली की दृष्टि से भी यह ग्रन्थ प्राचीन प्रतीत होता है। उत्तरवर्ती अनेक आचार्यों और ग्रन्थकारों ने इस ग्रन्थ की गाथाओं को उदाहरण के रूप में ग्रहण किया है।

आचार्य वप्पदेव

जीवन-परिचय : आचार्यों की परम्परा में आचार्य शुभनन्दि, रविनन्दि और वप्पदेवाचार्य के नाम आते हैं। शुभनन्दि और रविनन्दि नाम के दो आचार्य अत्यन्त विद्वान और कुशाग्रबुद्धि थे। इन दोनों आचार्यों से वप्पदेवाचार्य ने समस्त सिद्धान्त ग्रन्थों का अध्ययन किया था। जयधवला एवं महाधवला में इनका परिचय मिलता है।

वप्पदेव का समय वीरसेन स्वामी के पूर्व है। वीरसेनाचार्य के समक्ष वप्पदेव की व्याख्या लिखी जा चुकी थी। अत: वप्पदेवाचार्य को वीरसेनाचार्य के पूर्व और यतिवृषभाचार्य और आर्यमंक्षु-नागहस्ति के समकालीन मान सकते हैं। इस आधार पर आचार्य वप्पदेव का समय 5वीं-6ठी शती है।

रचना-परिचय : वप्पदेवाचार्य ने टीका लिखी है—

1. व्याख्याप्रज्ञप्ति टीका : वप्पदेवाचार्य ने अध्ययन के पश्चात् महाबन्ध को छोड़ षट्खंडागम के शेष पाँच खंडों पर व्याख्याप्रज्ञप्ति नाम की टीका लिखी है और छठे खण्ड की संक्षिप्त विवृत्ति भी लिखी है। इन छह खंडों के पूर्ण हो जाने के बाद उन्होंने 'कषायपाहुड' ग्रन्थ की टीका लिखी है। ये सभी रचनाएँ प्राकृतभाषा में हैं।

आचार्य श्रीदत्त प्रथम

जीवन-परिचय : श्रीदत्त नाम के दो विद्वान आचार्यों का उल्लेख ग्रन्थों में मिलता है। पहले श्रीदत्त आचार्य बड़े विद्वान और तपस्वी थे, इनका नाम चार आरातीय (अंग-पूर्वादि ज्ञानधारी) आचार्यों में माना जाता है। चार आरातीय आचार्य—विनयदत्त, श्रीदत्त, शिवदत्त और अर्हदत्त माने जाते हैं।

श्रीदत्त प्रथम का समय द्वितीय शताब्दी माना जाता है।

श्रीदत्त द्वितीय

जीवन-परिचय : श्रीदत्त द्वितीय वे आचार्य हैं जो दार्शनिक विद्वान के रूप में लोकप्रसिद्ध रहे हैं। वे दीप्तिमान, तपस्वी और तीन सौ तिरेसठ वादियों के विजेता थे। साथ ही ये शब्दशास्त्र में निपुण, प्रसिद्ध वैयाकरण आचार्य भी रहे हैं।

श्रीदत्त द्वितीय का समय पाँचवीं शताब्दी माना जाता है।

रचना-परिचय : श्रीदत्त द्वितीय के द्वारा लिखित एक ग्रन्थ 'जल्पनिर्णय' का परिचय मिलता है।

1. जल्पनिर्णय : यह ग्रन्थ जय-पराजय की व्यवस्था का निर्णय करनेवाला ग्रन्थ है। 'न्यायसूत्र' ग्रन्थ में जिन सोलह पदार्थों के तत्त्वज्ञान से मोक्ष माना गया है, उनमें वाद, जल्प और वितंडा भी तीन पदार्थ माने गये हैं। आचार्य श्रीदत्त ने जल्प का निर्णय करने के लिए यह 'जल्पनिर्णय' ग्रन्थ लिखा है। श्रीदत्त आचार्य वाद शाखा के विशेष विद्वान पंडित माने जाते हैं।

आचार्य देवनन्दि पूज्यपाद

जीवन-परिचय : भारतीय जैन परम्परा में जो लब्धप्रतिष्ठ ग्रन्थकार हुए हैं, उनमें आचार्य पूज्यपाद (देवनन्दि) का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन्हें विद्वत्ता और प्रतिभा का समान रूप से वरदान प्राप्त था। जैन परम्परा में स्वामी समन्तभद्र और आचार्य सिद्धसेन के बाद आचार्य पूज्यपाद को ही विशेष महत्ता प्राप्त है। ये अपने समय के प्रसिद्ध तपस्वी मुनिपुंगव (मुनियों में श्रेष्ठ) थे। वे साहित्य जगत के प्रकाशमान सूर्य थे, जिनके आलोक से समस्त वाङ्मय सदैव आलोकित रहेगा।

इनका दीक्षा नाम देवनन्दि था। बुद्धि की प्रखरता के कारण वे जिनेन्द्रबुद्धि कहलाये और देवों द्वारा उनके चरण पूजे गये थे, इस कारण वे लोक में पूज्यपाद नाम से प्रसिद्ध हुए।

आचार्य पूज्यपाद चरित और राजवलीकथे नामक ग्रन्थ में आपके पिता का नाम माधवभट्ट और माता का नाम श्रीदेवी दिया है। आप कर्नाटक देश के निवासी और ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे। आपका जन्म कोले नामक ग्राम में हुआ था।

आचार्य पूज्यपाद के समय के सम्बन्ध में विशेष विवाद नहीं है। अनेक प्रमाणों के आधार पर इनका समय ई. सन् की छठी शताब्दी सिद्ध होता है, जो सर्वमान्य है।

कहा जाता है कि बचपन में इन्होंने नाग द्वारा एक मेढ़क को निगल जाने का दृश्य देखकर और मेढ़क की तड़पन देखकर संसार से विरक्त होकर दिगम्बरी दीक्षा ग्रहण कर ली थी।

देवनन्दि-पूज्यपाद व्याकरण, काव्य, सिद्धान्त, वैद्यक और छन्द आदि विविध विषयों के मर्मज्ञ विद्वान थे। जैनेन्द्र व्याकरण के कर्त्ता के नाम से ही इनकी प्रसिद्धि है। ये मूलसंघान्तर्गत नन्दिसंघ के प्रधान आचार्य थे। जिनसेन स्वामी ने इनकी स्तुति करते हुए लिखा है—

''कवीनां तीर्थकृद्देवः किं तरां तत्र वर्ण्यते।
विदुषां वाङ्मलध्वंसि तीर्थं यस्य वचोमयम्।।

अर्थात् जो कवियों में तीर्थंकर के समान थे और जिनका वचनरूपी तीर्थ विद्वानों के वचनरूपी मल को धोनेवाला है, उन देवनन्दि आचार्य की स्तुति करने में कोई भी समर्थ नहीं है।

आचार्य गुणनन्दि, महाकवि धनंजय, वादिराज और पद्मप्रभ आदि अनेक विद्वानों ने आपका स्तवन किया है। आप नन्दिसंघ के प्रधान आचार्य थे। महान दार्शनिक, अद्वितीय वैयाकरण, अपूर्व वैद्य, धुरंधर कवि, बहुत बड़े तपस्वी, सातिशय योगी और पूज्य महात्मा थे।

आचार्य पूज्यपाद की कविता में काव्यतत्त्व की अपेक्षा दर्शन और अध्यात्मतत्त्व अधिक है। सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थ से इनकी विद्वत्ता का अनुमान किया जा सकता है। नैयायिक आदि दर्शनों की समीक्षा कर इन्होंने अपनी विद्वत्ता प्रकट की है।

आचार्य पूज्यपाद ने कवि के रूप में अध्यात्म, आचार और नीति का प्रतिपादन किया है।

आपके जीवन की अनेक घटनाएँ हैं। यथा-

1. **विदेहगमन :** आचार्य पूज्यपाद को गगनगामी विद्या प्राप्त थी, जिससे वे विदेह क्षेत्र जाया करते थे।

2. **नेत्र ज्योति प्राप्त होना :** किसी कारण एक दिन उनकी आँखों की ज्योति नष्ट हो गयी थी। अतएव उन्होंने शान्त्यष्टक स्तोत्र की रचना की और एकाग्रता से उसका पाठ किया, जिससे उनकी नेत्र ज्योति पुनः प्रकट हो गयी।

3. **चरणों की पूजा :** देवतागण आपके चरणों की पूजा करते थे।

4. **औषधऋद्धि :** इन्हें औषध ऋद्धि भी प्राप्त थी।

5. **लोहा बनता सोना :** इनके पाद के स्पर्शजल के प्रभाव से लोहा सोना बन जाता था।

रचना-परिचय : आपके द्वारा रचित ग्रन्थ निम्न हैं—

1. **सर्वार्थसिद्धि (तत्त्वार्थवृत्ति) :** आचार्य पूज्यपाद की यह महनीय कृति है। तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थ पर गद्य में लिखी गयी यह मध्यम परिमाण की वृत्ति है। इसमें सिद्धान्त के साथ दार्शनिक विवेचन भी है। इसको तत्त्वार्थवृत्ति या सर्वार्थसिद्धि कहा गया है। आचार्य देवनन्दि ने तत्त्वार्थसूत्र की यह बहुमूल्य टीका बनाकर पाठकों को ज्ञान की विपुल सामग्री प्रस्तुत की है।

2. **समाधितन्त्र :** इस ग्रन्थ का दूसरा नाम समाधिशतक भी है। इसमें 105

पद्य हैं। अध्यात्म विषय का बहुत ही सुन्दर विवेचन इस ग्रन्थ में है। बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा के स्वरूप का विस्तारपूर्वक विवेचन बहुत ही सरल और सरस कथन में किया है। इसके अध्ययन से मन प्रसन्न हो जाता है और मनुष्य को अपनी भूल का बोध जाता है।

3. **इष्टोपदेश :** इष्टोपदेश 51 पद्यों का छोटा सा लघुकाय ग्रन्थ है, जो आध्यात्मिक रस से सरावोर है। इसकी रचना का एकमात्र हेतु यही है कि संसारी आत्मा अपने स्वरूप को पहचानकर शरीर, इन्द्रिय एवं सांसारिक अन्य पदार्थों से अपने को भिन्न अनुभव करने लगे। इस ग्रन्थ के अध्ययन से आत्मा की शक्ति विकसित हो जाती है।

4. **दशभक्ति :** जैनागम में भक्ति के अनेक भेद हैं। पूज्यपाद स्वामी की संस्कृत में सिद्धभक्ति, श्रुत-भक्ति, चारित्र-भक्ति, योगि-भक्ति, निर्वाण-भक्ति और नन्दीश्वर भक्ति—ये भक्तियाँ उपलब्ध हैं। काव्य की दृष्टि से ये भक्तियाँ बड़ी ही सरस और गम्भीर हैं।

5. **जन्माभिषेक :** श्रवणबेलगोला के अभिलेखों में पूज्यपाद की कृतियों में जन्माभिषेक का भी निर्देश आया है। वर्तमान में एक जन्माभिषेक उपलब्ध है। यह रचना प्रौढ़ और प्रवाहमय है।

6. **जैनेन्द्रव्याकरण :** यह आचार्य पूज्यपाद की व्याकरण पर आधारित मौलिक कृति है। यह पांच अध्यायों में विभक्त है। इसकी सूत्र संख्या तीन हजार के लगभग है।

7. **सिद्धिप्रिय-स्तोत्र :** इस स्तोत्र में 26 पद्यों में चतुर्विंशति तीर्थंकरों की स्तुति की गयी है। रचना प्रौढ़ और प्रवाहयुक्त है।

इन प्रमुख ग्रन्थों के अतिरिक्त पूज्यपाद के वैद्यक सम्बन्धी प्रयोग भी उपलब्ध हैं। वैद्यसारसंग्रह और छन्दशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ भी इनके द्वारा रचित हैं, जो वर्तमान में उपलब्ध नहीं हैं।

आचार्य आर्यमंक्षु और नागहस्ति

जीवन-परिचय : ये दोनों आचार्य दिगम्बर एवं श्वेताम्बर दोनों परम्पराओं में प्रतिष्ठित हैं। श्वेताम्बर परम्परा में आर्यमंक्षु को आर्यमंगु नाम से उल्लिखित किया गया है। आर्यमंक्षु और नागहस्ति क्षमाश्रमण और महावाचक पदों से विभूषित थे। इन दोनों को सिद्धान्त ग्रन्थों का विशेष ज्ञान था। ये दोनों आचार्य अपने समय के कर्मसिद्धान्त के महान विद्वान और आगम को जाननेवाले थे।

आर्यमंक्षु और नागहस्ति ने गुणधराचार्य के मुखकमल से निकली कषायपाहुड की गाथाओं के समस्त अर्थ को सम्यक प्रकार से ग्रहण किया था। चूर्णिसूत्र रचयिता यतिवृषभ आर्यमंक्षु के शिष्य और नागहस्ति के अन्तेवासी हैं।

गुणधराचार्य ने कसायपाहुड की सूत्रगाथाओं को रचकर स्वयं उनकी व्याख्या करके आर्यमंक्षु और नागहस्ति को पढ़ाया था।

आचार्य आर्यमंक्षु सूत्रों का कथन करनेवाले, उनमें कहे गये आचार को पालनेवाले, ज्ञान और दर्शन गुणों के प्रभावक तथा श्रुतसिद्धान्त को जाननेवाले धीर आचार्य हैं। नागहस्ति व्याकरण तथा कर्म सिद्धान्त को जानने में प्रधान यशस्वी आचार्य रहे हैं। ये दोनों आचार्य सिद्धान्त के मर्मज्ञ, श्रुतसागर के पारगामी और सूत्रों के अर्थ के व्याख्याता थे। आप गुप्ति, समिति और व्रतों के पालन में सावधान तथा परीषह और उपसर्गों के सहन करने में निपुण थे। ये दोनों आचार्य वाचक और प्रभावक भी थे।

डॉ. ज्योतिप्रसादजी ने नागहस्ति की जन्मतिथि ई. सन् 130-132 निर्धारित की है और आर्यमंक्षु को नागहस्ति से पूर्ववर्ती मानकर उनका समय ई. सन् 50 माना है।

ये दोनों आचार्य महावीर स्वामी की परम्परा की 28वीं पीढ़ी पर आते हैं, जिसका अर्थ है कि इनका समय वीरनिर्वाण संवत् सातवीं शताब्दी है।

आचार्य यतिवृषभ

जीवन-परिचय : आचार्य यतिवृषभ आर्यमंक्षु के शिष्य और नागहस्ति के अन्तेवासी थे। उक्त दोनों आचार्यों को कषायपाहुड की गाथाएँ आचार्य परम्परा से प्राप्त हुई थीं। आचार्य यतिवृषभ ने उक्त दोनों गुरुओं के समीप गुणधराचार्य के कषायपाहुड सुत्त की गाथाओं का अध्ययन किया और वे उनके रहस्य से परिचित हो गये, अतएव उन्होंने उन सूत्र-गाथाओं का सम्यक अर्थ ग्रहण करके उन पर सर्वप्रथम छह हजार चूर्णिसूत्रों की रचना की।

आचार्य यतिवृषभ ने चूर्णिसूत्रों की रचना संक्षिप्त शब्दावली में प्रस्तुत कर महान अर्थ को निबद्ध किया है। यदि आचार्य यतिवृषभ चर्णिसूत्रों की रचना न करते तो सम्भव है कि कषायपाहुड का अर्थ ही स्पष्ट न हो पाता।

अत: चूर्णिसूत्रों के प्रथम रचयिता होने के कारण आचार्य यतिवृषभ का अत्यधिक महत्त्व है।

तिलोयपण्णत्ती ग्रन्थ और अनेक प्रमाणों के आधार पर आचार्य यतिवृषभ का समय 5वीं शताब्दी माना जाता है।

रचना-परिचय : आचार्य यतिवृषभ की दो कृतियाँ मानी जाती हैं।

1. **कषायपाहुड पर रचित चूर्णिसूत्र :** कषायपाहुड पर रचित चूर्णिसूत्रों का परिमाण छ: हजार श्लोक प्रमाण है। आचार्य यतिवृषभ ने प्रत्येक सूत्र की रचना बीजपद मानकर व्याख्या रूप से की है।

2. **तिलोयपण्णत्ती :** तिलोयपण्णत्ती करणानुयोग का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है, जो प्राकृत भाषा में लिखा गया है। इसमें तीन लोक के स्वरूप, आकार, प्रकार, विस्तार, क्षेत्रफल और युगपरिवर्तन आदि विषयों का निरूपण किया गया है। साथ ही जैन सिद्धान्त, पुराण और भारतीय इतिहास विषयक सामग्री भी है। यह ग्रन्थ 9 महाधिकारों और 180 अवान्तर अधिकारों में विभक्त है। तिलोयपण्णत्ती ग्रन्थ

विश्व-रचना का साररूप में दर्शन करानेवाला, भूगोल एवं खगोल विषय का विस्तृत ज्ञान देनेवाला अनमोल ग्रन्थ है।

कर्मसिद्धान्त एवं अध्यात्म-सिद्धान्त विषयक ग्रन्थों में प्रवेश करने हेतु इस ग्रन्थ का अध्ययन अतिआवश्यक है। यह ग्रन्थ अनेक ग्रन्थों को अच्छी तरह समझने हेतु सुदृढ़ आधार बनाता है।

स्वामी कुमार (स्वामी कार्तिकेय)

जीवन-परिचय : बारस अणुवेक्खा के रचयिता कुमार या स्वामी कुमार अथवा कार्तिकेय हैं। स्वामी कार्तिकेय ने कुमारावस्था में ही मुनि-दीक्षा धारण की थी और दारुण (कठोर) उपसर्ग को समताभाव से सहन कर स्वर्गलोक को प्राप्त किया था। स्वामी कुमार दक्षिण देश के निवासी अग्नि नामक राजा के पुत्र थे।

स्वामी कुमार प्रतिभाशाली, आगम-पारगामी, प्रसिद्ध आचार्य और बालब्रह्मचारी थे। इसी कारण इन्होंने सदैव पाँच बालयति तीर्थंकरों का स्मरण किया है।

आचार्य कार्तिकेय का समय अनेक प्रमाणों के आधार पर विक्रम संवत् की दूसरी-तीसरी शती का माना जाता है।

रचना-परिचय : स्वामी कार्तिकेय की एक मात्र रचना द्वादशानुप्रेक्षा है।

1. द्वादशानुप्रेक्षा : इस ग्रन्थ में 489 गाथाएँ हैं और इनमें अध्रुव, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचित्व, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्म—इन बारह अनुप्रेक्षाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।

चंचल मन एवं विषय-वासनाओं के निरोध (रोकने) के लिये ये अनुप्रेक्षायें लिखी गयी हैं, जो संयम की शिक्षा देनेवाली और वैराग्य-जननी हैं।

द्वादश अनुप्रेक्षाओं के साथ इस ग्रन्थ में व्यवहार और निश्चयधर्म का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। इसके साथ सात तत्त्व, बारह तप, बारह व्रत, दस धर्म और ध्यान आदि का भी वर्णन किया है।

स्वामी कार्तिकेय की रचना-शक्ति शिवार्य और कुन्दकुन्द के समान है।

आचार्य जोइन्दु (योगीन्दु, योगीन्द्र) देव

जीवन-परिचय : जैन परम्परा में 'जोइंदु' या योगीन्द्र देव एक श्रेष्ठ आचार्य है। संस्कृत-टीकाकारों ने जोइंदु को योगीन्दु नाम से प्रचलित किया है और इसी नाम से ये प्रसिद्ध भी हुए हैं।

आचार्य योगीन्दु का अपभ्रंश भाषा पर अपूर्व अधिकार है। इन्होंने अपने ग्रन्थों में आत्मा का सुन्दर चित्रण किया है। ये क्रान्तिकारी विचारधारा के प्रवर्त्तक हैं। इसी कारण इन्होंने बाह्य आडम्बर का खण्डन कर आत्मज्ञान पर जोर दिया है। आचार्य योगीन्दु ने रहस्यवाद का भी सुन्दर निरूपण किया है।

डॉ. ए. एन. उपाध्ये ने अपनी परमात्मप्रकाश की प्रस्तावना में योगीन्दु का समय ईसा की छठी शताब्दी माना है।

रचना-परिचय : जोइन्दु की निम्नलिखित रचनाएँ मानी जाती हैं।

1. परमात्मप्रकाश : योगीन्दु मुनिराज ने अपने शिष्य भट्ट प्रभाकर को मोक्षमार्ग समझाने के लिए परमात्मप्रकाश की रचना की थी। यह अपभ्रंश भाषा का सबसे प्राचीन आध्यात्मिक ग्रन्थ है। इसमें दो अधिकार हैं। प्रथम अधिकार में 126 दोहे हैं। इसमें बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा के स्वरूप को समझाया है। दूसरे अधिकार में 219 दोहों में मोक्ष का स्वरूप समझाया है।

2. **योगसार :** योगसार में 108 दोहे हैं। विषय-वर्णन प्राय: परमात्मप्रकाश के समान है। अपभ्रंश भाषा में लिखा गया यह ग्रन्थ एक प्रकार से परमात्मप्रकाश का सार कहा जा सकता है।

3. **अमृताशीति :** यह ग्रन्थ एक उपदेश-प्रधान रचना है इसमें 82 पद्य हैं, जिनमें ध्यान योग के अनेक विषयों की चर्चा की गयी है।

4. **निजात्माष्टक :** यह आठ पद्यों का एक स्तोत्र है। इसकी भाषा प्राकृत है। इसमें सिद्ध परमेष्ठी का स्वरूप बतलाया है।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त आचार्य योगीन्दु के नाम पर नौकाश्रावकाचार, अध्यात्मसन्दोह, सुभाषित तन्त्र, तत्त्वार्थटीका, दोहापाहुड आदि अनेक रचनाएँ भी प्राप्त होती हैं।

पात्रकेसरी या पात्रस्वामी

जीवन-परिचय : कवि और दार्शनिक के रूप में पात्रकेसरी का नाम विख्यात है। आचार्य जिनसेन ने आदिपुराण में इनके गुणों का स्मरण किया है।

पात्रकेसरी का जन्म उच्चकुलीन ब्राह्मण वंश में हुआ था। ये राजा के महामात्य पद पर प्रतिष्ठित थे। ब्राह्मण समाज में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी।

आराधना कोश के अनुसार—पात्रकेसरी अहिच्छत्र के अवनिपाल राजा के राज्य में 500 ब्राह्मणों में सबसे प्रमुख थे। इस नगर में तीर्थंकर पार्श्वनाथ का एक विशाल चैत्यालय था। पात्रकेसरी प्रतिदिन उस चैत्यालय में जाया करते थे।

एक दिन चैत्यालय में चारित्रभूषण मुनि के मुख से स्वामी समन्तभद्र के 'देवागम' स्तोत्र का पाठ सुनकर ये आश्चर्यचकित हुए। पात्रकेसरी ने अपनी विलक्षण प्रतिभा द्वारा स्तोत्र कण्ठस्थ कर लिया और अर्थ विचारने लगे। जैसे-जैसे स्तोत्र का अर्थ स्पष्ट होने लगा वैसे वैसे उनकी जैन तत्त्वों पर श्रद्धा उत्पन्न होती गयी और अन्त में उन्होंने जैनधर्म स्वीकार कर लिया। परन्तु उन्हें अनुमान प्रमाण के बारे में कुछ सन्देह हुआ। वे सोच ही रहे थे कि पद्मावती देवी का आसन कम्पायमान हुआ। उन्होंने पात्रकेसरी का सन्देह दूर करने के लिए पार्श्वनाथ की मूर्ति के फण पर हेतुलक्षण का एक श्लोक अंकित किया—

अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्।
नान्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्।।

प्रात:काल जब पात्रकेसरी ने मंदिर में प्रवेश किया तब वहाँ उन्हें फण पर अंकित उस श्लोक को देखकर उनकी शंका दूर हो गयी और संसार के पदार्थों से उनकी उदासीनता बढ़ गयी। उन्होंने दिगम्बर मुद्रा धारण कर ली। आत्म-साधना करते हुए उन्होंने विभिन्न देशों में विहार किया और जैनधर्म की प्रभावना की।

आचार्य समन्तभद्र स्वामी के बाद पात्रकेसरी को द्रमिल-संघ का प्रधान आचार्य माना जाता है। पात्रकेसरी का व्यक्तित्व तर्क के क्षेत्र में विशेष प्रसिद्ध रहा है। आप न्याय के निष्णात विद्वान थे।

पात्रकेसरी का समय ईसा की छठीं शताब्दी के उत्तरार्ध और सातवीं शताब्दी के पूर्वार्ध का माना जाता है।

रचना-परिचय : इनकी दो रचनाएँ मानी जाती हैं—

1. **पात्रकेसरी स्तोत्र :** इस स्तोत्र का दूसरा नाम 'जिनेन्द्र गुण संस्तुति' भी है। समन्तभद्र के स्तोत्रों के समान यह स्तोत्र भी न्यायशास्त्र का ग्रन्थ है। इस स्तुति-ग्रन्थ में 50 श्लोक हैं, परन्तु यह एक महत्त्वपूर्ण कृति है। अर्हन्त भगवान की अवस्था का बहुत ही सुन्दर वर्णन इसमें है।

2. **त्रिलक्षण कदर्थन :** इस ग्रन्थ में बौद्धों द्वारा प्रतिपादित अनेक मतों का खण्डन कर जैन मत को प्रमाण के साथ प्रस्तुत किया है।

आचार्य मानतुंग

जीवन-परिचय : आचार्य मानतुंग भक्तिपूर्ण काव्य के सृष्टा कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं। इनका प्रसिद्ध स्तोत्र 'भक्तामर' दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायों में समानरूप से मान्य हैं। इनकी यह रचना इतनी लोकप्रिय रही है कि उसके प्रत्येक पद्य के प्रत्येक चरण को लेकर स्तोत्रकाव्य लिखे जाते रहे हैं।

आचार्य मानतुंग काशी देश के निवासी धनदेव के पुत्र थे।

आचार्य मानतुंग को हर्ष अथवा राजा भोज के समकालीन माना जाता है। ऐतिहासिक विद्वान, मानतुंगाचार्य की स्थिति हर्षवर्धन के समय की मानते हैं। प्रसिद्ध इतिहासज्ञ विद्वान पं. नाथूराम प्रेमी ने भी आचार्य मानतुंग को हर्षकालीन माना है। अत: इन सब कथनों के आधार पर आचार्य मानतुंग का समय 6वीं शताब्दी का उत्तरार्ध या 7वीं शताब्दी का पूर्वार्ध माना जा सकता है।

आचार्य मानतुंग के जीवन-चरित्र के बारे में अनेकों चर्चाएँ प्रसिद्ध हैं, परन्तु एक विशेष कथा यह है कि—

मालवा प्रान्त के उज्जैन नगर में राजा भोज का शासन था। राजा भोज ने आचार्य मानतुंग को शास्त्रार्थ करने राज्यसभा में बुलाया। चूंकि दिगम्बर साधु इस प्रकार से राजद्वार जाते नहीं हैं, अत: आचार्य ने राजा की आज्ञा ठुकरा दी। बार-बार प्रयास करने पर भी जब आचार्य राजदरबार में नहीं गये तो सैनिक बलपूर्वक आचार्य को उठाकर राज्यदरबार में ले गये। आचार्य मानतुंग इसे मुनिचर्या के विपरीत समझकर मौन धारण कर ध्यान में बैठ गये।

राजा के बार-बार प्रयास करने पर भी जब आचार्य कुछ नहीं बोले तो अन्य दरबारीगण आचार्य को महामूर्ख सिद्ध करने लगे, तब राजा ने क्रोधित होकर उन्हें हथकड़ी और बेड़ी डलवाकर अड़तालीस कोठरियों के भीतर एक बन्दीगृह में कैद करवा दिया और मजबूत ताले लगवा दिये।

मुनिश्री तीन दिनों तक बन्दीगृह में रहे। चौथे दिन भक्तामरस्तोत्र की रचना

की। ज्यों ही आचार्य मानतुंग ने 48 काव्य पढ़े, त्यों ही हथकड़ी, बेड़ी और 48 ताले टूट गये और खट-खट सारे दरवाजे खुल गये। बार-बार ताले लगाए जाने पर भी पुन: सारे ताले खुलते गये और आचार्य मानतुंग राज्यसभा में जा पहुँचे।

तपस्वी मुनिराज के दिव्यशरीर की आभा (चमक) के प्रभाव से राजा का हृदय काँप गया। उसने आचार्य के चरणों में झुककर उनसे क्षमायाचना की, उन्होंने नाना प्रकार से आचार्य की स्तुति की और श्रावक के व्रत ग्रहण कर अपने राज्य में जैनधर्म का खूब प्रचार किया।

रचना-परिचय : आचार्य मानतुंग की दो रचनाएँ उपलब्ध हैं—

1. **भक्तामर स्तोत्र :** इसमें 48 पद्य हैं जो वसन्ततिलका छन्द में लिखे गये हैं। इसमें आदि तीर्थंकर ऋषभनाथ की स्तुति की गयी है, इसीलिए इसका नाम 'आदिनाथस्तोत्र' भी प्रचलित है। इस स्तोत्र-काव्य में भक्ति, दर्शन और काव्य की त्रिवेणी एक साथ प्रवाहित होती है।

2. **भयहर स्तोत्र :** आचार्य मानतुंग की दूसरी रचना 'भयहर' स्तोत्र है। यह प्राकृत भाषा के 21 पद्यों में रचा गया है। इसमें भगवान पार्श्वनाथ का स्तवन किया गया है।

जटासिंहनन्दी

जीवन-परिचय : पुराण-काव्य-निर्माता के रूप में जटाचार्य या जटासिंहनन्दी का नाम विशेष रूप से प्रसिद्ध है। जिनसेन, उद्योतनसूरि आदि प्राचीन आचार्यों ने जटासिंहनन्दि की प्रशंसा की है। ये जैन संस्कृत-प्रबन्ध-काव्य के आद्य अर्थात् प्रथम रचयिता है। जिस प्रकार आचार्य समन्तभद्र संस्कृत के प्रथम स्तुतिकार हैं, उसी प्रकार जटासिंहनन्दी प्रथम प्रबन्ध-संस्कृत-काव्य-रचयिता हैं।

आचार्य जिनसेन प्रथम के 'हरिवंशपुराण' एवं 'जिनसेन द्वितीय' के आदिपुराण के उल्लेखों के अतिरिक्त उत्तरवर्ती अनेक आचार्यों ने एवं उनके ग्रन्थों में जटासिंहनन्दी की एवं इनके द्वारा रचित वरांगचरित की प्रशंसा की है। अतएव जटासिंहनन्दी का समय 7वीं शताब्दी का उत्तरार्ध एवं 8वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाता है।

रचना-परिचय : जटासिंहनन्दि की एक ही रचना उपलब्ध है।

1. वरांगचरित : यह एक पौराणिक महाकाव्य है। इसमें पुराणतत्त्व और काव्यतत्त्व का मिश्रण है। इसकी कथावस्तु में नायक 22वें तीर्थंकर नेमिनाथ तथा श्रीकृष्ण के समकालीन 'वरांग' नामक पुण्यपुरुष की कथा का वर्णन किया है। इस पौराणिक महाकाव्य में नगर, ऋतु, उत्सव, क्रीडा, रति, विवाह, जन्म, राज्याभिषेक, युद्ध और विजय आदि का वर्णन महाकाव्य के समान ही है। इसमें 31 सर्ग और 1805 श्लोक हैं। इस महाकाव्य के नायक वरांग में धर्मनिष्ठा, सदाचार, कर्तव्यपरायणता, सहिष्णुता, विवेक, साहस, लौकिक और आध्यात्मिक शत्रुओं पर विजयप्राप्ति आदि अनेक नायक के गुण पाये गये हैं।

'वरांगचरित' के रचयिता ने इसे धर्मकथा कहा है, पर वास्तव में यह एक पौराणिक-महाकाव्य है। इस धर्मकथा-महाकाव्य में जिनमन्दिर और जिनबिम्ब निर्माण, प्रतिमा-स्थापना, पूजा, पूजा का फल और दानादि का वर्णन किया है।

आचार्य सुमतिदेव

जीवन-परिचय : आचार्य सुमति का उल्लेख सन्मति-टीकाकार के रूप में मिलता है। आचार्य वादिराज ने अपने पार्श्वनाथचरित में सुमतिदेव को नमस्कार किया है। आचार्य सुमतिदेव अपने समय के प्रसिद्ध दिगम्बराचार्य थे।

सुमतिदेव अच्छे प्रभावशाली तार्किक आचार्य के रूप में प्रसिद्ध रहे हैं। तत्त्वसंग्रह और शिलालेख के उल्लेख के अनुसार आचार्य सुमतिदेव प्रमाण और नय के विशिष्ट विद्वान हैं।

आचार्य सुमतिदेव का स्थितिकाल 8वीं शताब्दी के लगभग रहा है।

रचना-परिचय: सुमतिदेव द्वारा लिखित टीका 'सन्मति-टीका' है। दूसरे ग्रन्थ 'सुमति-सप्तक' नाम का भी उल्लेख 'श्रवणबेलगोला' की प्रशस्ति में मिलता है। इन दोनों ग्रन्थों का विस्तार उपलब्ध नहीं है।

आचार्य काणभिक्षु

जीवन-परिचय : आचार्य जिनसेन ने काणभिक्षु को कथाग्रन्थ के रचयिता के रूप में उल्लेख किया है—इससे ज्ञात होता है कि उनका कोई प्रथमानुयोग सम्बन्धी ग्रन्थ रहा है।

उन्होंने लिखा है कि वे काणभिक्षु जयवन्त हों जिन्होंने श्रेष्ठ कथाग्रन्थ लिखा है। इससे स्पष्ट जाना जा सकता है कि काणभिक्षु ने किसी कथाग्रन्थ अथवा पुराण की रचना की थी। खेद है कि यह अपूर्व ग्रन्थ इस समय अनुपलब्ध है।

इनकी गुरु-परम्परा भी अज्ञात है, किन्तु यह तो निश्चित ही है कि इनका समय जिनसेनाचार्य से पूर्ववर्ती है। इनका समय विक्रम की 8वीं शताब्दी माना जाता है।

रचना-परिचय : काणभिक्षु की एकमात्र रचना कथा-ग्रन्थ है, जो अभी उपलब्ध नहीं है, अत: उसका परिचय प्रस्तुत करना सम्भव नहीं है।

आचार्य एलाचार्य

जीवन-परिचय : एलाचार्य का स्मरण आचार्य वीरसेन ने विद्यागुरु के रूप में किया है। उन्होंने लिखा है—जिसके आदेश से मैंने इस सिद्धान्तग्रन्थ को लिखा है वे एलाचार्य मेरे ऊपर प्रसन्न हों। अर्थात् वीरसेनाचार्य ने एलाचार्य की कृपा से आगम-सिद्धान्त को लिखे जाने का निर्देश किया है।

वप्पदेव के पश्चात् कुछ वर्ष बीत जाने पर सिद्धान्तशास्त्र के रहस्य ज्ञाता एलाचार्य हुए हैं। ये चित्रकूट नगर के निवासी थे। इनके साथ में रहकर ही वीरसेनाचार्य ने सकल सिद्धान्तों का अध्ययन किया है। वीरसेन के गुरु होने के कारण ये सिद्धान्तशास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान थे। एलाचार्य वाचकगुरु थे और उनकी प्रतिभा अप्रतिम थी।

एलाचार्य वीरसेन के समकालीन अथवा कुछ पूर्ववर्ती हैं, अत: वे आठवीं शताब्दी के उत्तरार्ध और नवम शती के पूर्वार्द्ध के विद्वानाचार्य हैं।

रचना-परिचय : एलाचार्य का कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है।

आचार्य इन्द्रनन्दि

जीवन-परिचय : इन्द्रनन्दि नाम के अनेक आचार्यों का परिचय ग्रन्थों में मिलता है। प्रसिद्ध इन्द्रनन्दि श्रुतावतार ग्रन्थ के कर्त्ता हैं। इन्होंने अपना परिचय और गुरु-परम्परा का कोई उल्लेख नहीं किया है।

इन्द्रनन्दि के समय के बारे में भी कोई विशेष प्रमाण नहीं मिलता है, परन्तु ये विक्रम की 10वीं शताब्दी के विद्वान माने जाते हैं।

रचना-परिचय : इन्द्रनन्दि की एक मात्र कृति 'श्रुतावतार' है।

श्रुतावतार : यह ग्रन्थ मूलरूप में मणिकचन्द्र ग्रन्थमाला से 'तत्त्वानुशासनादि-संग्रह' में प्रकाशित हो चुका है। इस ग्रन्थ में संस्कृत के 187 श्लोक हैं। दिगम्बर सम्प्रदाय में जो श्रुतावतार लिखे गये हैं, उनमें इन्द्रनन्दि का श्रुतावतार अधिक प्रसिद्ध है। इसमें दो सिद्धान्तागमों (धवला और जयधवला) का परिचय भी दिया है।

आचार्य श्रीधर

जीवन-परिचय : श्रीधर नाम के अनेक आचार्यों का परिचय इतिहास-ग्रन्थों में मिलता है, परन्तु प्रसिद्ध श्रीधराचार्य गणित और ज्योतिष विषय के विद्वान आचार्य हैं जो अन्य सभी श्रीधराचार्यों से भिन्न हैं। इनका नाम नन्दिसंघ बलात्कारगण के आचार्यों में मिलता है।

श्रीधराचार्य का उल्लेख भास्कराचार्य, केशव, दिवाकर और दैवज्ञ आदि अन्य प्रसिद्ध आचार्यों ने भी आदरपूर्वक किया है।

अनेक प्रमाणों और आचार्य द्वारा लिखित रचनाओं के अन्त: परीक्षण के आधार पर श्रीधराचार्य का समय ईस्वी सन् की आठवीं शती का अन्तिम भाग या नवम शती का पूर्वार्द्ध माना जाता है।

रचना-परिचय : श्रीधराचार्य की ज्योतिष और गणित विषयक चार रचनाएँ मानी जाती हैं—

1. गणितसार या त्रिंशतिका : गणितसार या त्रिंशतिका गणितविषयक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ की नागरी अक्षरों में लिखी प्रति पंडित महेन्द्र कुमार न्यायाचार्य, काशी संस्कृत टीका सहित प्राप्त हुई थी। यह गणित का अद्‌भुत ग्रन्थ है। श्रीधराचार्य के गणितसम्बन्धी अनेक नियमों को भास्कर जैसे प्रसिद्ध विद्वानों एवं गणकों ने ज्यों-का-त्यों स्वीकार किया है।

2. ज्योतिर्ज्ञानविधि : यह ज्योतिषशास्त्र का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें करण, संहिता और मुहूर्त्त इन तीनों विषयों का समावेश किया है। यह ग्रन्थ 10 अध्यायों में विभक्त है।

3. जातकतिलक : यह कन्नड़ भाषा में लिखित जातक सम्बन्धी ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ अभी उपलब्ध नहीं है।

4. बीजगणित : यह बीजगणित का ग्रन्थ है, परन्तु उपलब्ध नहीं है।

आचार्य अकलंकदेव

जीवन-परिचय : आचार्य समन्तभद्र यदि जैनन्याय के दादा हैं तो अकलंकदेव पिता हैं। ये बड़े प्रखर तार्किक और दार्शनिक थे।

अकलंकदेव प्रतिभा सम्पन्न, महावादी, ग्रन्थकार और युगप्रवर्तक विद्वान आचार्य थे। ये जैनन्याय या दर्शन के उन प्रतिष्ठापक विद्वानों में से हैं, जिन्होंने दार्शनिक क्रान्ति के समय समन्तभद्र और सिद्धसेन के साहित्य से प्राप्त भूमिका या आगम की परिभाषाओं को दार्शनिक रूप देकर न्याय का प्रतिष्ठापन किया। ये जैनदर्शन के तलदृष्टा और भारतीय दर्शनों के प्रकाण्ड पंडित थे। उनका व्यक्तित्व असाधारण था। वे अपने समय के युगनिर्माता महापुरुष थे। अकलंकदेव के सम्बन्ध में श्रवणबेलगोला के अभिलेखों में अनेक स्थानों पर वर्णन किया है, अभिलेख संख्या 47 में लिखा है कि—

''षट्तर्केणाकलंकदेवविबुधः साक्षादयं भूतले''।

अर्थात् अकलंकदेव षट्दर्शन और तर्कशास्त्र में इस पृथ्वी पर साक्षात् विबुध अर्थात् (बृहस्पतिदेव) थे। वे अनेक शास्त्रार्थों के विजेता कवि थे।

शिलावाक्यों में उन्हें तर्कभूवल्लभ, महर्धिक, समस्तवादिकरीन्द्र-दर्पोन्मूलक, अकलंघी, बौद्धबुद्धि-वैधव्यदीक्षागुरु, स्याद्वादकेसरसटाशततीव्रमूर्तिपञ्चानन, अशेषकुतर्कविभ्रमतयोनिर्मूलोन्मूलक, अकलंक भानु, अचिन्त्यमहिमा और सकलतार्किकचक्रचूड़ामणिमरीचि आदि महान विशेषणों से विभूषित किया है।

मान्यखेट नगर के राजा शुभतुंग के मन्त्री पुरुषोत्तम के दो पुत्र थे—एक अकलंक और दूसरा निकलंक। एक बार अष्टाह्निका पर्व में माता पिता के साथ वे दोनों भाई जैन गुरु रविगुप्त के पास गये। माता-पिता ने उक्त पर्व में ब्रह्मचर्य व्रत लिया और अपने बालकों को भी दिलाया। जब वे युवा हुए तब अपने ब्रह्मचर्य व्रत को यावज्जीवन व्रत मानकर उन्होंने विवाह नहीं करवाया। पिता ने समझाया कि वह प्रतिज्ञा तो केवल अष्टाह्निका पर्व के लिए थी, पर वे कुमार अपनी बात पर दृढ़

रहे और उन्होंने आजन्म ब्रह्मचारी रह कर अपना समय शास्त्राभ्यास में लगाया। अकलंक एकसन्धि और निकलंक द्विसन्धि थे अर्थात् उनकी बुद्धि इतनी प्रखर थी कि अकलंक को एक बार सुनने मात्र से पाठ याद हो जाता था और उसी पाठ को दो बार सुनने से निकलंक को स्मरण हो जाता था। उस समय जैन धर्म पर होनेवाले बौद्धों के आक्षेपों से उनका चित्त विचलित हो रहा था। और वे इसके प्रतीकारार्थ बौद्ध शास्त्रों का अध्ययन करने के लिये बाहर निकल पड़े। वे अपना धर्म छिपाकर एक बौद्ध मठ में विद्याध्ययन करने लगे। एक दिन गुरुजी के अशुद्ध पाठ को अकलंक ने शुद्ध कर दिया। शुद्ध पाठ को देखकर गुरुजी को सन्देह हो गया कि कोई जैन यहाँ छिप कर पढ़ रहा है। इसी की खोज के सिलसिले में एक दिन गुरु ने सब शिष्यों को जैनमूर्ति को लांघने की आज्ञा दी। अकलंकदेव मूर्ति पर एक धागा डाल कर उसे लांघ गये और इस संकट से बच गये। एक रात्रि में गुरु ने अचानक अकलंक के मुख से 'णमो अरहंताणं,आदि पंच नमस्कार मन्त्र सुन लिया। तब गुरुजी ने दोनों भाइयों को पकड़कर मठ की ऊपरी मंजिल में कैद कर दिया। एक दिन दोनों भाई किसी तरह ऊपर से कूद कर भाग निकले। राजा को ज्ञात होने पर उन्हें पकड़ने अश्वारोही सैनिक भेज दिये। सैनिकों को देखकर निकलंक ने बड़े भाई को तालाब में छुपने की विनती की, जिससे जिनशासन की प्रभावना हो सके। आखिर दुखी होकर अकलंक ने तालाब में छिपकर अपने प्राणों की रक्षा की। निकलंक आगे भागने लगे। उसके साथ एक अनजान व्यक्ति भी अज्ञात भय की आशंका से निकलंक के साथ ही भागने लगा। घुड़सवारों ने आकर दोनों को मार दिया।

अकलंक वहाँ से चल कर कलिंग देश के नगर रत्नसंचयपुर पहुँचे। वहाँ के राजा हिमशीतल की रानी मदनसुन्दरी का अष्टाह्निका पर्व के दिनों में जैन रथ निकलवाया। उन्होंने जैनधर्म की प्रभावना के लिए बौद्ध धर्म की तारादेवी से शास्त्रार्थ किया और उन्हें हराकर जैनधर्म की महती प्रभावना करवाई। जनता के हृदय में जैनधर्म के प्रति आस्था बढ़ी। रानी भी अपने संकल्प को पूर्ण कर प्रसन्न हुई।

अनेक विद्वानों के मत एवं अकलंक देव के द्वारा रचित ग्रन्थों के आधार पर इनका समय सातवीं शती का उत्तरार्द्ध सिद्ध होता है। कुछ प्रमाणों के आधार पर अकलंकदेव का समय ई. 720 से 780 तक सिद्ध होता है।

रचना-परिचय : अकलंकदेव की रचनाओं को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है- मौलिक और टीका-ग्रन्थ। उनके मौलिक ग्रन्थ हैं—

1. **लघीयस्त्रय :** लघीयस्त्रय में तीन छोटे-छोटे प्रकरणों का संग्रह है— 1. प्रमाण-प्रवेश 2. नयप्रवेश 3. निक्षेप प्रवेश। इसमें कुल 78 मूल कारिकाएँ हैं। अकलंकदेव ने लघीयस्त्रय पर एक विवृत्ति भी लिखी है। विवृत्ति अर्थात् विशेष विवरण। लघीयस्त्रय में 6 परिच्छेद (अध्याय) हैं।

2. **न्यायविनिश्चय सवृत्ति :** इस ग्रन्थ में 480 श्लोक हैं और तीन परिच्छेद हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान और प्रवचन। अकलंक देव ने इस पर भी चूर्णि या वृत्ति लिखी है।

3. **सिद्धिविनिश्चय :** अकलंकदेव की यह महत्त्वपूर्ण कृति है। इसमें 12 प्रस्ताव हैं, जिनमें प्रमाण, नय और निक्षेप का वर्णन किया गया है।

4. **प्रमाणसंग्रह सवृत्ति :** इस ग्रन्थ का जैसा नाम है तदनुसार उसमें प्रमाणों का संग्रह है। इस ग्रन्थ की भाषा और विषय दोनों ही कठिन हैं। प्रमाण संग्रह में 9 प्रस्ताव और साढ़े सतासी 87 $^{1}/_{2}$ कारिकाएँ हैं। कारिकाओं के अतिरिक्त पूरक वृत्ति भी लिखी है। यह ग्रन्थ अपनी खास विशेषता रखता है। यह ग्रन्थ अकलंक ग्रन्थमाला में प्रकाशित है। अकलंकदेव की जैन न्याय को अपूर्व देन है यह ग्रन्थ।

टीकाग्रन्थ : 1. तत्त्वार्थवार्तिक सभाष्य : यह ग्रन्थ तत्त्वार्थसूत्र की व्याख्या होने के कारण दस अध्यायों में विभक्त है। इसका विषय भी तत्त्वार्थसूत्र के समान सैद्धान्तिक और दार्शनिक है। तत्त्वार्थसूत्र के प्रत्येक सूत्र पर वार्तिकरूप में व्याख्या लिखे जाने के कारण यह तत्त्वार्थवार्तिक कही गयी है। वार्तिक श्लोकात्मक भी होते हैं और गद्यात्मक भी। तत्त्वार्थवार्तिक की एक प्रमुख विशेषता यह है कि जितने भी मन्तव्य उसमें लिखे गये हैं, उन सबका समाधान अनेकान्त के द्वारा किया गया है।

2. **अष्टशती देवागमविवृत्ति :** जैनदर्शन अनेकान्तवादी दर्शन है। आचार्य समन्तभद्र अनेकान्तवाद के सबसे बड़े व्यवस्थापक हैं। उन्होंने आप्तमीमांसा नामक ग्रन्थ द्वारा उसकी व्यवस्था की है। इसी आप्तमीमांसा पर अकलंकदेव ने अपनी 'अष्टशती' वृत्ति लिखी है। इस वृत्ति का प्रमाण 800 श्लोक हैं, अतः यह अष्टशती कहलाती है।

आचार्य रविषेण

जीवन-परिचय : आचार्य रविषेण ने अपने संघ और गण-गच्छादि का कोई उल्लेख नहीं किया, परन्तु अन्त में सेन नाम होने से वे सेनसंघ के विद्वान जान पड़ते हैं। इन्द्रगुरु के शिष्य दिवाकर यति, दिवाकर यति के शिष्य अर्हन्मुनि, अर्हन्मुनि के शिष्य लक्ष्मणसेन और लक्ष्मणसेन के शिष्य रविषेण थे। इसके सिवाय इन्होंने अपना कोई परिचय नहीं दिया है।

रविषेणाचार्य का समय आठवी नौवीं शती है।

रचना-परिचय : आपके द्वारा एक ही ग्रन्थ की रचना हुई है—

1. पद्मचरित (पद्मपुराण) : रविषेणाचार्य के द्वारा रचित एक मात्र कृति पद्मचरित या पद्मपुराण है, जो संस्कृत भाषा का एक सुन्दर चरित्र ग्रन्थ है। इसमें 123 पर्व हैं जिनकी श्लोक संख्या 20,000 के लगभग है। ग्रन्थ में बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत के समय में होनेवाले आठवें बलभद्र राम का चरित वर्णित है। इनके साथ आठवें नारायण लक्ष्मण, भरत, सीता,जनक, अंजना-पवनंजय, भामंडल, हनुमान और राक्षसवंशी रावण, विभीषण और सुग्रीवादि का परिचय दिया गया है और प्रसंगवश अनेक कथानक संकलित हैं।

आचार्य शामकुण्ड

जीवन-परिचय : आचार्य शामकुण्ड अपने समय के बड़े विद्वान थे। उनका समय सम्भवत: सातवीं शताब्दी है। इस विषय में निश्चयत: या प्रामाणिक रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

रचना-परिचय : इन्होंने पद्धति रूप टीका का निर्माण किया था—

1. पद्धतिरूप टीका : पद्धति अर्थात् वृत्ति सूत्र के विषम पदों के भंजन को या विश्लेषणात्मक विवरण को पद्धति कहते हैं। यह टीका षट्खंडागम के छठवें खण्ड को छोड़कर आदि के पाँच खण्डों पर तथा दूसरे सिद्धान्त ग्रन्थ कषाय-प्राभृत पर लिखी थी।

शामकुण्डाचार्य के समक्ष यतिवृषभाचार्य कृत वृत्तिसूत्र रहे थे, जिन पर इन्होंने बारह हजार श्लोक प्रमाण पद्धति टीका की रचना की थी।

आचार्य वावननन्दि मुनि

जीवन-परिचय : वावननन्दि मुनि के जीवन-परिचय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। यह तमिल व्याकरण तोलकपियम्, अगतियम् तथा अविनयम् नामक व्याकरण ग्रन्थों के ज्ञाता थे। साथ ही संस्कृत जैनेन्द्र-व्याकरण में भी प्रवीण थे।

जैनेन्द्र व्याकरण के ज्ञाता होने के कारण इनका समय पूज्यपाद के बाद होना चाहिये। अर्थात् ये ईसा की सातवीं शताब्दी के विद्वान हैं।

रचना-परिचय : इन्होंने व्याकरण-ग्रन्थ की रचना की है—

1. नन्नू लू : इन्होंने शिव गंग नाम के सामन्त के अनुरोध पर 'नन्नू लू' नाम की व्याकरण की रचना की थी। यह ग्रन्थ सबसे अधिक प्रचलित है। इस ग्रन्थ पर अनेक टीकाएँ हैं। उनमें मुख्य टीका मल्लिनाथ की है। यह ग्रन्थ स्कूल और कॉलेजों में पाठ्यक्रम के रूप में निर्धारित है।

आचार्य कुमारनन्दी

जीवन-परिचय : ये अपने समय के विशिष्ट विद्वान थे। आचार्य विद्यानन्द ने अपने ग्रन्थ प्रमाण-परीक्षा में इनका उल्लेख किया है। तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ 280 में भी कुमारनन्दि के वादन्याय का उल्लेख किया है।

ये अकलंकदेव के आस-पास के विद्वान हैं, क्योंकि इनके वादन्याय पर सिद्धिविनिश्चय के जल्पसिद्धि प्रकरण का प्रभाव है। कुमारनन्दि भट्टारक विद्यानन्द से पूर्ववर्ती हैं।

रचना-परिचय : आपके द्वारा लिखित एक ही ग्रन्थ है—

1. **वादन्याय :** कुमारनन्दि का वादन्याय नाम का एक महत्त्वपूर्ण तर्कग्रन्थ प्रसिद्ध रहा है। खेद है कि यह ग्रन्थ अप्राप्य है।

आचार्य वादीभसिंह

जीवन-परिचय : 'वादीभसिंह' आचार्य का मूल नाम नहीं है, किन्तु एक उपाधि है, जो वादियों के विजेता होने के कारण उन्हें प्राप्त हुई थी। उपाधि के कारण ही इन्हें वादीभसिंह कहा जाने लगा।

ओडमदेव नाम से पण्डित के. भुजबली शास्त्री ने अनुमान लगाया है कि ये वादीभसिंह जन्मत: ओडेम या उड़िया सरदार होंगे।

आदिपुराण के जिनसेनाचार्य ने वादीभसिंह का स्मरण करते हुए उन्हें उच्च कोटि का कवि, वाग्मी और गमक बतलाया है। पार्श्वनाथचरित के रचयिता वादिराजसूरि ने भी वादीभसिंह का उल्लेख किया है और उन्हें स्याद्वाद की गर्जना करनेवाला तथा कवियों का अभिमान चूर-चूर करनेवाला बतलाया है।

इन उल्लेखों से वादीभसिंह एक प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान ज्ञात होते हैं। उनकी स्याद्वादसिद्धि ग्रन्थ उन्हें उच्चकोटि का दार्शनिक सिद्ध करती है। गद्य चिन्तामणि के अन्तिम दो पद्यों से स्पष्ट है कि उनका नाम ओडम देव था।

वादीभसिंह अपने समय के प्रतिभा-सम्पन्न विद्वान आचार्य थे। उनके कवित्व और गमकत्वादि की प्रशंसा अनेक विद्वानों ने की है। वे तार्किक विद्वान थे। मल्लिषेण प्रशस्ति में मुनि पुष्पसेन को आचार्य अकलंकदेव का सधर्मा लिखा है और वादीभसिंह ने उन्हें अपना गुरु बतलाया है। इससे स्पष्ट है कि वादीभसिंह आचार्य अकलंक देव के उत्तरवर्ती विद्वान हैं। वादीभसिंह का समय ईसा की 8वीं शताब्दी का अन्त और 9वीं शताब्दी का पूर्वार्ध जान पड़ता है।

रचना-परिचय : वादीभसिंह की तीन रचनाएँ प्रसिद्ध हैं—

1. **स्याद्वादसिद्धि :** इस ग्रन्थ में 14 अधिकार हैं। इन अधिकारों में अनुष्टुप् छन्द में स्याद्वाद विषय का अच्छा वर्णन है। यद्यपि यह ग्रन्थ अपूर्ण है, क्योंकि इसके अन्तिम प्रकरण में साढ़े छह कारिकाएँ ही पायी गयी हैं। इस प्रकरण की अपूर्णता के कारण कोई पुष्पिका वाक्य भी उपलब्ध नहीं होता।

2. **क्षत्रचूडामणि :** यह उच्चकोटि का नीतिकाव्य ग्रन्थ है। भारतीय काव्य साहित्य में इस प्रकार का महत्त्वपूर्ण नीतिकाव्य अन्यत्र देखने में नहीं आया है। इसकी सरस सूक्तियाँ और उपदेश हृदय-स्पर्शी है। यह पद्यात्मक सुन्दर रचना है। इसमें महाकवि वादीभसिंह ने क्षत्रियों के चूडामणि महाराज जीवंधर के पावन चरित्र का अत्यन्त रोचक ढंग से वर्णन किया है। कुमार जीवंधर भगवान महावीर के समकालीन थे। उन्होंने शत्रु से अपने पिता का राज्य वापिस ले लिया और उसका उचित रीति से पालन किया। अन्त में संसार के भोगों और देह से विरक्त हो भगवान महावीर के सन्मुख दीक्षा लेकर तपश्चरण द्वारा आत्म-शुद्धि कर अविनाशी पद प्राप्त किया। ग्रन्थ का कथानक आकर्षक और भाषा सरल संस्कृत है।

3. **गद्यचिन्तामणि :** गद्यचिन्तामणि एक गद्यकाव्य है। इसकी भाषा प्रौढ़ है। कवि वादीभसिंह ने गद्यचिन्तामणि जैसा उत्कृष्ट गद्यकाव्य लिखकर जैन संस्कृत-काव्य को अमरत्व प्रदान किया है। उनके द्वारा रचा गया गद्यचिन्तामणि ग्रन्थ सभा का भूषण स्वरूप था। कवि ने इसके कथानक को 11 लम्बों (अध्यायों) में विभक्त किया है। कवि की गद्यशैली 'कादम्बरी' के समान है। कवि ने इस कथा में काव्यत्व का पूर्णतया समावेश किया है। पात्रों के चरित्र भी जीवन्तरूप में चित्रित हुए हैं। इस कृति में अप्रतिम कल्पना-वैभव, वर्णन-पटुता और मानव-मनोवृत्तियों का मार्मिक निरीक्षण पाया जाता है।

आचार्य वीरसेन

जीवन-परिचय : आचार्य वीरसेन सिद्धान्त के पारंगत विद्वान तो थे ही, साथ ही गणित, न्याय, ज्योतिष और व्याकरण आदि विषयों का भी पाण्डित्य उन्हें प्राप्त था। इनका बुद्धिवैभव अत्यन्त अगाध है।

आचार्य जिनसेन ने उन्हें वादिप्रमुख, लोकप्रसिद्ध वाग्मी और कवि के अतिरिक्त श्रुतकेवली के तुल्य बतलाया है। इन्होंने लिखा है कि उनकी सर्वार्थगामिनी प्रज्ञा बुद्धि को देखकर बुद्धिमानों को सर्वज्ञ की सत्ता में कोई शंका नहीं रहती थी। उनकी बुद्धिमत्ता को देखकर ही आचार्य जिनसेन ने अपने आदिपुराण एवं धवला प्रशस्ति में इनको कविवृन्दारक कहकर स्तुति की है। उन्होंने लिखा है कि—

वे अत्यन्त प्रसिद्ध वीरसेन भट्टारक हमें पवित्र करें, जिनकी आत्मा स्वयं पवित्र है, जो कवियों में श्रेष्ठ हैं, जो लोकव्यवहार और काव्यस्वरूप के महान ज्ञाता हैं तथा जिनकी वाणी के समक्ष औरों की बात ही क्या, स्वयं सुर-गुरु-वृहस्पति की वाणी भी सीमित जान पड़ती है। षट्खण्डागम सिद्धान्त ग्रन्थ के ऊपर टीका रचनेवाले मेरे गुरु वीरसेन भट्टारक के कोमल चरण-कमल सर्वदा मेरे मनरूपी सरोवर में विद्यमान रहें।

अत: हम कह सकते हैं कि वीरसेनाचार्य कवि और वाग्मी तो थे ही, साथ ही सिद्धान्तग्रन्थों के टीकाकार के रूप में भी प्रसिद्ध थे।

आचार्य वीरसेन चन्द्रसेन के प्रशिष्य और आर्यनन्दी के शिष्य थे। उनके विद्या गुरु एलाचार्य और दीक्षा गुरु आर्यनन्दी थे।

आचार्य वीरसेन का स्थिति-काल विवादास्पद नहीं है, क्योंकि उनके शिष्य जिनसेन ने उनकी अपूर्ण जयधवलाटीका को शक संवत् 759 की फाल्गुन शुक्ल दशमी को पूर्ण किया है, अत: इस तिथि के पूर्व ही आचार्य वीरसेन का समय होना चाहिए और उनकी धवला टीका की समाप्ति इससे बहुत पहले होनी चाहिए। अत: आचार्य वीरसेन का समय ई. सन् की 9वीं शताब्दी (ई. सन् 816) है।

रचना-परिचय : आचार्य वीरसेन की दो रचनाएँ उपलब्ध हैं—

1. **धवला टीका :** यह एक रचना है। बहत्तर हजार श्लोक प्रमाण प्राकृत और संस्कृत मिश्रित भाषा में मणि-प्रवाल शैली में, यह षट्खण्डागम के आदि के पाँच खण्डों की सबसे महत्त्वपूर्ण टीका है। टीका होने पर भी यह एक स्वतन्त्र जैसा सिद्धान्त ग्रन्थ है। यह टीका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस टीका में निमित्त, ज्योतिष, न्यायशास्त्र, दार्शनिक और गणित आदि विषयों के साथ षट्खण्डागम के रहस्य और वस्तुतत्त्व का मर्म उद्घाटित किया गया है। साथ ही प्राचीन ग्रन्थों के उद्धरण भी टीका में दिए गये हैं, इससे आचार्य वीरसेन के श्रुत विद्वान होने के प्रमाण मिलते हैं।

आचार्य ने अपनी यह धवला टीका विक्रमांक शक 738 कार्तिक शुक्ल 13 सन् 816 बुधवार के दिन प्रातः काल में समाप्त की थी। उस समय राजा अमोघवर्ष प्रथम का शासन काल था।

इन्द्रनन्दि के श्रुतावतार से ज्ञात होता है कि बप्पदेव की टीका को देखकर वीरसेनाचार्य को धवला टीका लिखने की प्रेरणा प्राप्त हुई। इस टीका के स्वाध्याय से वीरसेन ने अनुभव किया कि सिद्धान्त के अनेक विषयों का वर्णन छूट गया है, तथा अनेक स्थलों पर विस्तृत सिद्धान्त सम्बन्धी व्याख्याएँ भी अपेक्षित हैं। अतएव इन्होंने एक नयी विवृति लिखने की परम आवश्यकता अनुभव की। फलतः बप्पदेव की टीका से प्रेरणा प्राप्त कर 'धवला' एवं 'जयधवला' नामक टीकाएँ लिखीं।

2. **जयधवला टीका :** आचार्य वीरसेन की दूसरी रचना कषाय-प्राभृत के प्रथम चार अध्यायों पर आधारित जयधवला टीका थी। आचार्य इसके केवल बीस हजार श्लोक प्रमाण ही लिख सके थे कि उनका स्वर्गवास हो गया। इस ग्रन्थ का अवशिष्ट भाग उनके शिष्य जिनसेन स्वामी ने पूरा किया था।

आचार्य वीरसेन स्वामी साक्षात् केवली के समान समस्त विद्याओं के पारगामी विद्वान थे। उनकी भारती (दिव्यवाणी) भरतचक्रवर्ती आज्ञा के समान षट्खण्ड में फैली थी। अर्थात् जिस प्रकार षट्खण्ड पृथ्वी पर भरत चक्रवर्ती की आज्ञा का निर्विवादरूप से पालन किया जाता था, उसी प्रकार आचार्य वीरसेन की वाणी भी छह खण्डरूप षट्खण्डागम नामक परमागम में निर्विवादरूप से मान्य है। जिसका खण्डन कोई नहीं कर सकता है।

यह आश्चर्य की बात है कि एक व्यक्ति आगम का इतना बड़ा ज्ञानी हो सकता है।

आचार्य जिनसेन (प्रथम)

जीवन-परिचय : आचार्य जिनसेन प्रथम पुन्नाटसंघ के विद्वान आचार्य थे। यह एक ऐसे प्रबुद्धाचार्य हैं, जिनकी वर्णन-क्षमता और काव्य-प्रतिभा अपूर्व है। पुन्नाट कर्नाटक का प्राचीन नाम है। आचार्य जिनसेन के दादागुरु का नाम जयसेन और गुरु का नाम अमितसेन था। इनके अग्रज धर्मबन्धु कीर्तिषेण मुनि थे। जो बहुत ही शान्त और बुद्धिमान थे। इन्हीं कीर्तिषेण के शिष्य आचार्य जिनसेन थे।

आचार्य जिनसेन ने ग्रन्थ-रचना का समय स्वयं अपने ग्रन्थ में दिया है। उसके अनुसार हरिवंश-पुराण की रचना शक संवत् 705 (ई. सन् 783) में सम्पन्न हुई है। यदि हरिवंश-पुराण के समय कवि की आयु 30-35 वर्ष की मानी जाय तो कवि का जन्म अनुमानत: ई. सन् 748 के लगभग आता है।

रचना-परिचय: आचार्य जिनसेन की एक ही रचना प्राप्त है—

1. हरिवंशपुराण : यह हरिवंशपुराण दिगम्बर सम्प्रदाय का प्रमुख पुराण-ग्रन्थ है। इसमें 22वें तीर्थंकर नेमिनाथ का चरित्र निबद्ध है, पर प्रसंगोपात्त अन्य कथानक भी लिखे गये हैं। भगवान नेमिनाथ के साथ नारायण श्रीकृष्ण और बलभद्र पद के धारक श्री बलराम का भी चरित्र अंकित है। पाण्डवों और कौरवों का चरित्र भी सुन्दरता के साथ निबद्ध है। कथावस्तु 66 सर्गों में विभक्त है। ग्रन्थ का कथाभाग अत्यन्त रोचक है। भगवान नेमिनाथ के वैराग्य का वर्णन पढ़कर प्रत्येक मानव का हृदय सांसारिक मोह माया से विमुख हो जाता है।

66वें सर्ग में भगवान महावीर से लेकर लोहाचार्य तक की आचार्य परम्परा का वर्णन है, जो बहुत उपयोगी है।

हरिवंशपुराण ज्ञानकोष है। इसमें कर्म-सिद्धान्त, आचारशास्त्र, तत्त्वज्ञान एवं आत्मानुभूति सम्बन्धी चर्चाएँ निबद्ध हैं। यह पुराणग्रन्थ होने पर भी उच्चकोटि का महाकाव्य है।

आचार्य जिनसेन (द्वितीय)

जीवन-परिचय : आचार्य जिनसेन द्वितीय आचार्य वीरसेन के प्रमुख शिष्य थे। वे विशाल बुद्धि के धारक, कवि, विद्वान और वाग्मी (वाक्पटु) थे। इसीलिए आचार्य गुणभद्र ने लिखा है कि—जिस प्रकार हिमाचल से गंगा का, सर्वज्ञ से दिव्य ध्वनि का और उदयाचल से भास्कर का उदय होता है, उसी प्रकार वीरसेन से जिनसेन का उदय हुआ है। वे तप और गुण में श्रेष्ठ, बड़े साहसी, गुरुभक्त और विनयी थे। बाल्यावस्था से ही जीवन पर्यन्त अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत के धारक थे। उनके जीवन में स्वाभाविक मृदुता और सिद्धान्तों के प्रति दृढ़ता थी। बाल्यावस्था से ही उन्होंने ज्ञान की सतत आराधना में जीवन बिताया था। वे उच्चकोटि के कवि भी थे।

वास्तव में वीरसेन, जिनसेन और गुणभद्र—इन तीनों आचार्यों का साहित्यिक व्यक्तित्व अत्यन्त महनीय है और तीनों एक-दूसरे के अनुपूरक हैं। आचार्य वीरसेन के अपूर्ण कार्य को जिनसेन ने पूर्ण किया है और जिनसेन के अपूर्ण कार्य को आचार्य गुणभद्र ने पूर्ण किया है। हरिवंशपुराण की रचना शक संवत् 705 (ई. सन् 783) में पूर्ण हुई है, अत: जिनसेन स्वामी का समय ई. सन् की आठवीं शती का उत्तरार्द्ध है।

रचना-परिचय : जिनसेनाचार्य काव्य, व्याकरण, नाटक, दर्शन, अलंकार, आचार, कर्मसिद्धान्त आदि अनेक विषयों के बहुज्ञ विद्वान थे। इनकी तीन रचनाएँ उपलब्ध हैं:

1. **पार्श्वाभ्युदय :** यह अपने ढंग का एक अद्वितीय समस्या पूर्ति खण्डकाव्य है। दीक्षाधारण करने के पश्चात् भगवान पार्श्वनाथ प्रतिमायोग में विराजमान हैं, पूर्वभव का बैरी कमठ का जीव शंवर नाम का ज्योतिष्क देव अवधिज्ञान से अपने शत्रु पर अनेक प्रकार का उपसर्ग करता है। परन्तु पार्श्वनाथ अपने ध्यान से रंचमात्र भी विचलित नहीं होते हैं। धरणेन्द्र और पद्मावती उपसर्ग दूर कर देते हैं, और

पार्श्वनाथ को केवलज्ञान हो जाता है।

साहित्यिक दृष्टि से यह काव्य बहुत ही सुन्दर और काव्य गुणों से मंडित है। इसमें चार सर्ग हैं। काव्य में कुल मिलाकर 364 मन्दाक्रान्ता पद्य हैं।

2. **आदिपुराण :** आचार्य जिनसेन ने त्रेसठ शलाका पुरुषों के चरित्र लिखने की इच्छा से 'महापुराण' का प्रारम्भ किया था, किन्तु बीच में ही स्वर्गवास हो जाने के कारण उनकी यह अभिलाषा पूरी नहीं हो सकी। और महापुराण अधूरा ही रह गया, जिसे उनके शिष्य गुणभद्र ने पूरा किया। आदिपुराण में जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ का चरित वर्णित है। आदिपुराण में 47 पर्व और बारह हजार श्लोक हैं।

3. **जयधवला टीका :** कषायपाहुड के प्रथम स्कन्ध पर जयधवला नाम की बीस हजार श्लोक प्रमाण टीका लिखने के बाद आचार्य वीरसेन का स्वर्गवास हो गया, अत: उनके शिष्य जिनसेन ने अवशिष्ट भाग पर चालीस हजार श्लोक प्रमाण टीका लिखकर उसे पूर्ण किया।

आचार्य गुणभद्र

जीवन-परिचय : प्रतिभामूर्ति आचार्य गुणभद्र संस्कृतभाषा के श्रेष्ठ कवि हैं। ये योग्य गुरु के योग्य शिष्य हैं।

ये सेनसंघ के आचार्य थे। इनके गुरु का नाम आचार्य जिनसेन द्वितीय और दादा गुरु का नाम वीरसेन है। आचार्य दशरथ गुणभद्र के विद्यागुरु थे।

आचार्य जिनसेन प्रथम या द्वितीय के समान गुणभद्र की भी साधनाभूमि कर्नाटक और महाराष्ट्र रही है। इन्हीं प्रान्तों में रहकर इन्होंने अपने ग्रन्थों की रचना की है।

आचार्य गुणभद्र का समय शक संवत् 820, ई. सन् 898 अर्थात् ई. सन् की नवम शती का अन्तिम चरण सिद्ध होता है।

आचार्य गुणभद्र सिद्धान्तशास्त्र रूपी समुद्र के परगामी थे। इनकी अतिशय बुद्धि प्रखर तथा तीक्ष्ण थी, ये अनेक नय और प्रमाण के ज्ञान में निपुण, अगणित गुणों से विभूषित, समस्त जगत में प्रसिद्ध और उत्तम तप से भूषित थे। आप उत्कृष्ट ज्ञान से युक्त, पक्षोपवासी, तपस्वी तथा भावलिंगी मुनिराज थे।

रचना-परिचय : आचार्य गुणभद्र की रचनाओं में सरसता और सरलता के साथ प्रसादगुण भी समाहित है। गुणभद्र का समस्त जीवन साहित्य-साधना में ही व्यतीत हुआ। आपके द्वारा लिखित रचनाएँ निम्न हैं—

1. **आदिपुराण :** गुणभद्राचार्य ने अपने गुरु जिनसेन द्वितीय द्वारा अधूरे छोड़े आदिपुराण के 43वें पर्व के चौथे पद्य से समाप्ति पर्यन्त कुल 1620 पद्य लिखे हैं।

2. **उत्तरपुराण :** इस ग्रन्थ में अजितनाथ तीर्थंकर से लेकर महावीर पर्यन्त तेईस तीर्थंकर, ग्यारह चक्रवर्ती, नौ नारायण, नौ बलभद्र, नौ प्रतिनारायण और जीवन्धर स्वामी आदि कुछ विशिष्ट पुरुषों के चरित दिये गये हैं। कथावस्तु पर्याप्त विस्तृत है।

आचार्य जिनसेन की इच्छा महापुराण को विशाल ग्रन्थ बनाने की थी। परन्तु

वे उसे पूर्ण न कर सके। यदि गुणभद्राचार्य उत्तरपुराण को भी आदिपुराण के सदृश विस्तृत बनाते तो महापुराण एक उत्कृष्ट कोटि का महाभारत जैसा एक विशाल ग्रन्थ होता। परन्तु आयु और शरीर आदि की स्थिति देखते हुए वे बहुत से मौलिक और विस्तृत कथन नहीं कर पाये। परन्तु फिर भी उनका उत्तरपुराण अत्यन्त महान और प्रशंसनीय है।

3. **आत्मानुशासन :** इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ में धर्म एवं नीति के 269 पद्य हैं। आत्मा के यथार्थ स्वरूप की शिक्षा देने के लिए इसका प्रणयन किया गया है। इस पर प्रभाचन्द्राचार्य ने संस्कृत-टीका और पण्डित टोडरमल ने हिन्दी-टीका लिखी है। यह आचार्य गुणभद्र की स्वतन्त्र कृति है।

4. **जिनदत्तचरित :** यह एक संस्कृत काव्यग्रन्थ है, जिसमें जिनदत्त का जीवन-परिचय अंकित है। यह माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला से मूल रूप में प्रकाशित हो चुका है। इस काव्य में 9 सर्ग हैं।

आचार्य शाकटायन पाल्यकीर्ति

जीवन-परिचय : शाकटायन यापनीय संघ के आचार्य थे। इनका वास्तविक नाम पाल्यकीर्ति था, परन्तु शाकटायन व्याकरण के कर्ता होने के कारण शाकटायन नाम से प्रसिद्ध हो गये थे। शाकटायन को श्रुतकेवली के तुल्य बताया है।

शाकटायन पाल्यकीर्ति का समय ई. सन् 1025 के पूर्व माना जाता है।

रचना-परिचय : आचार्य शाकटायन पाल्यकीर्ति की निम्नलिखित रचनाएँ उपलब्ध होती हैं—

1. **शब्दानुशासन अमोघवृत्तिसहित :** शाकटायन का शब्दानुशासन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमें चार अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय चार पादों में विभक्त है। यह ग्रन्थ अत्यन्त प्रसिद्ध रहा है।

2. **स्त्रीमुक्तिप्रकरण :** इस ग्रन्थ में 46 कारिकाएँ हैं।

3. **केवलि-भुक्ति-प्रकरण :** इसमें 37 कारिकाएँ हैं। कारिकाएँ तार्किक शैली में लिखी गयी हैं।

इनका कोई काव्यशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ भी रहा है, परन्तु वह आज उपलब्ध नहीं है।

आचार्य उग्रादित्य

जीवन-परिचय : आयुर्वेद के विशेषज्ञ, आचार्य उग्रादित्याचार्य ने अपना विशेष परिचय नहीं लिखा है, किन्तु अपने गुरु का नाम श्रीनन्दि, ग्रन्थ-निर्माण-स्थान रामगिरि पर्वत बताया है। रामगिरि पर्वत बेंगी में स्थित था। नागपुर से 24 मील दूर उत्तर में विद्यमान रामटेक को रामगिरि पर्वत माना गया है।

आचार्य उग्रादित्य ने अपने ग्रन्थ में दशरथ गुरु का भी उल्लेख किया है, जो आचार्य वीरसेन के शिष्य थे। इससे आचार्य उग्रादित्य का समय 9वीं शताब्दी का अन्तिम चरण माना जाता है।

रचना-परिचय : आचार्य उगग्रादित्य की एक ही रचना प्राप्त है।

1. कल्याणकारक : कल्याणकारक एक बृहदकाय ग्रन्थ है। राजा नृपतुंग अमोघवर्ष प्रथम की राज्यसभा में औषधि में मांस सेवन का निराकरण करने के लिए इस ग्रन्थ की रचना की थी। इस ग्रन्थ में पच्चीस अधिकार हैं और श्लोकसंख्या पाँच हजार है। यह आयुर्वेद का उत्तम ग्रन्थ है। यह सोलापुर से प्रकाशित है।

आचार्य महावीर

जीवन-परिचय : भारतीय गणित के इतिहास में आचार्य महावीर का नाम आदर के साथ लिया जाता है। जैन गणित को व्यवस्थित रूप देने का श्रेय इन्हीं को प्राप्त है।

आचार्य महावीर की गुरुपरम्परा और जीवनवृत्त के सम्बन्ध में कुछ भी सामग्री उपलब्ध नहीं है। इन्होंने ग्रन्थ के आरम्भ में अमोघवर्ष नृपतुंग के सम्बन्ध में प्रशंसात्मक विचार व्यक्त किये हैं। इन विचारों से आचार्य महावीर के समय पर तो प्रकाश पड़ता है, पर उनके जीवनवृत्त के सम्बन्ध में जानकारी उपलब्ध नहीं हो पाती।

अमोघवर्ष का राज्यकाल ईसा की नवम शताब्दी का पूर्वार्द्ध है। इनके शासनकाल में ही आचार्य महावीर का जन्म समय माना जाता है अत: आचार्य महावीर का समय ईसा की नवम शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाता है।

रचना-परिचय : आपके द्वारा लिखित केवल एक ही ग्रन्थ मिलता है।

1. गणितसार-संग्रह : महावीराचार्य का प्रामाणिक रूप से एक 'गणितसारसंग्रह' ग्रन्थ ही प्राप्त है। 'गणितसारसंग्रह' में नौ अधिकार हैं। इस ग्रन्थ में गणित की अनेक विशेषताएँ विद्यमान है।

इनके नाम से एक 'ज्योतिषपटल' का भी उल्लेख मिलता है, पर यह रचना अभी तक उपलब्ध नहीं है।

आचार्य अनन्तवीर्य

जीवन-परिचय : सिद्धिविनिश्चय के टीकाकार आचार्य अनन्तवीर्य न्यायशास्त्र के पारंगत थे। इनके गुरु का नाम रविभद्र है, इन्होंने स्वयं अपने को उनका 'पादोपजीवीं बतलाया है रविभद्र-पादोपजीवी । सिद्धिविनिश्चय टीका से ज्ञात होता है कि इनका दर्शनशास्त्रीय अध्ययन बहुत व्यापक और सर्वतोमुखी था। वैदिक संहिताओं, उपनिषद्, उनके भाष्य एवं वार्तिक आदि का भी इन्होंने गहरा अध्ययन किया था। न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, चार्वाक और बौद्धदर्शन के भी ये असाधारण पण्डित थे।

अनन्तवीर्य नाम के अनेक विद्वान हैं, परन्तु सिद्धिविनिश्चय टीका के कर्ता अनन्तवीर्य ई. सन् 975 के बाद और ई. सन् 1025 के पहले किसी समय में हुए हैं। डॉ. महेन्द्रकुमार जैन के अनुसार अनन्तवीर्य की समयावधि सन् 950 से 990 तक निश्चित होती है।

रचना-परिचय : रविभद्र-शिष्य आचार्य अनन्तवीर्य की दो रचनाएँ हैं—

1. **सिद्धिविनिश्चयटीका :** आचार्य अनन्तवीर्य की सिद्धिविनिश्चय टीका बड़ी ही महत्त्वपूर्ण है। यह टीका अकलंकदेव के सिद्धिविनिश्चय पर लिखी गयी विशाल टीका है। अनन्तवीर्य ने अपनी इस टीका में मूल के अभिप्राय को विस्तारित किया है। अर्थ के साथ-साथ अपने द्वारा रचित श्लोकों को भी व्यक्त किया है, जिससे पाठक को दर्शनशास्त्र के इस ग्रन्थ का अध्ययन करते हुए कहीं-कहीं गद्य-पद्यमय चम्पूकाव्य का आनन्द आ जाता है।

2. **प्रमाणसंग्रहभाष्य :** इनका दूसरा ग्रन्थ प्रमाणसंग्रहभाष्य या प्रमाण-संग्रहालंकार है। यह अकलंकदेव के प्रमाणसंग्रह की टीका है। इसका उल्लेख सिद्धिविनिश्चय टीका में किया गया है।

आचार्य विद्यानन्द

जीवन-परिचय : आचार्य विद्यानन्द ऐसे विद्वान हैं, जिन्होंने न्यायशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों की रचना कर श्रुतपरम्परा को गतिशील बनाया है। आप अपने समय के प्रसिद्ध तार्किक विद्वान थे। आपकी कृतियाँ आपके पाण्डित्य और प्रतिभा का पद-पद पर अनुभव कराती हैं। जैनदर्शन आपकी कृतियों से गौरवान्वित है। आचार्य विद्यानन्द दक्षिण भारत के कर्णाटक प्रान्त के निवासी थे। इसी प्रदेश को इनकी साधना और कार्यभूमि होने का सौभाग्य प्राप्त है। किंवदन्तियों के आधार पर यह माना जाता है कि इनका जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ था। ये जन्म से होनहार और प्रतिभाशाली थे। इन्होंने वैशेषिक, न्याय, मीमांसा, वेदान्त आदि वैदिक दर्शनों का अच्छा अभ्यास किया था और बौद्धदर्शन के मन्तव्यों में विशेषतया दिग्नाग, धर्मकीर्ति और प्रज्ञाकर आदि प्रसिद्ध बौद्ध विद्वानों के दार्शनिक ग्रन्थों का भी परिचय प्राप्त किया था। इस तरह वे अन्य दर्शनों और जैन सिद्धान्त ग्रन्थों के भी विशिष्ट विद्वान थे।

आचार्य विद्यानन्द प्रसिद्ध वैयाकरण, श्रेष्ठ कवि, अद्वितीय वादी, महान सैद्धान्तिक, महान तार्किक, सूक्ष्म प्रज्ञ और जिनशासन के सच्चे भक्त थे। आपकी रचनाओं पर आचार्य गृद्धपिच्छा, स्वामी समन्तभद्र, श्रीदत्त, सिद्धसेन, पात्रस्वामी, भट्टाकलंकदेव और कुमारनन्दि भट्टारक आदि पूर्ववर्ती विद्वानों की रचनाओं का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

आचार्य विद्यानन्द ने अपनी किसी भी कृति में समय का निर्देश नहीं किया है। फिर भी इनका समय आचार्य माणिक्यनन्दि और अकलंक के मध्य अर्थात 8वीं-9वीं शताब्दी माना जाता है।

रचना-परिचय : आचार्य विद्यानन्द की रचनाओं को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है।

स्वतन्त्र ग्रन्थ :

1. **आप्तपरीक्षा स्वोपज्ञवृत्तिसहित :** इस ग्रन्थ में 124 कारिकाएँ हैं और परमेष्ठी के गुणस्तोत्र की आवश्यकता एवं विभिन्न आप्तों के निराकरण पूर्वक सच्चे आप्त का स्वरूप बतलाया गया है।

2. **प्रमाणपरीक्षा :** इसमें प्रमाण का सम्यग्ज्ञान लक्षण करके उसके भेद-प्रभेदों और विषय का वर्णन किया है। इसमें प्रमाण की विस्तृत चर्चा सरल गद्य में है।

3. **पत्रपरीक्षा :** इस लघुकाव्य ग्रन्थ में विभिन्न दर्शनों की अपेक्षा 'पत्र' के लक्षणों को उद्धृत कर जैन दृष्टिकोण से 'पत्र' का लक्षण दिया गया है तथा प्रतिज्ञा और हेतु-इन दो अवयवों को ही अनुमान का अंग बताया है।

4. **सत्यशासनपरीक्षा :** इसमें पुरुषाद्वैत आदि 12 शासनों की परीक्षा की प्रतिज्ञा की गयी है, किन्तु 9 शासनों की परीक्षा पूरी और प्रभाकर शासन की अधूरी परीक्षा उपलब्ध होती है। यह ग्रन्थ भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित है।

5. **विद्यानन्दमहोदय :** आचार्य विद्यानन्द की यह सबसे पहली रचना है। इसके पश्चात् ही उन्होंने तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक और अष्टसहस्री आदि महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की है। यह ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं है, पर उसका नामोल्लेख श्लोकवार्तिक आदि ग्रन्थों में मिलता है।

6. **श्रीपुर पार्श्वनाथ स्तोत्र :** श्रीपुर या अन्तरिक्ष के पार्श्वनाथ की स्तुति में तीस पद्य लिखे गये हैं। इस स्तोत्र में दर्शन और काव्य का गंगा-यमुनी संगम है।

टीकाग्रन्थ :

1. **अष्टसहस्री :** यह जैन न्याय का अत्यन्त महनीय ग्रन्थ है। इस एक ग्रन्थ के अध्ययन कर लेने पर अन्य ग्रन्थ पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। स्वयं आचार्य विद्यानन्दजी ने कहा है कि हजार शास्त्रों को सुनने से क्या, केवल अष्टसहस्री को सुन लेने से स्वसिद्धान्त और परसिद्धान्तों का ज्ञान हो जायेगा। यह आचार्य समन्तभद्र के देवागम स्तोत्र पर लिखी गयी विस्तृत टीका है। इसमें 10 परिच्छेद हैं।

2. **युक्त्यनुशासनालंकार :** यह आचार्य समन्तभद्र के महत्त्वपूर्ण और गम्भीर स्तोत्रग्रन्थ की टीका है । इसमें अन्तिम तीर्थंकर महावीर के शासन की परीक्षा की गयी है। यह गूढ़ दार्शनिक चर्चा से ओत-प्रोत है। इस ग्रन्थ पर पं. जुगलकिशोर जी मुख्तार एवं पं. मूलचन्द्रजी शास्त्री महावीरजी ने भी टीका लिखी है।

3. **तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक :** टीकाग्रन्थों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्वार्थ-

श्लोकवार्तिक है। यह ग्रन्थ आचार्य गृद्धपिच्छ उमास्वामी के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ तत्त्वार्थसूत्र पर कुमारिल के मीमांसाश्लोकवार्तिक और धर्मकीर्ति के प्रमाणवार्तिक की तरह पद्यात्मक शैली में लिखा गया है। विद्यानन्द ने इसकी रचना करके कुमारिल, धर्मकीर्ति जैसे प्रसिद्ध तार्किकों के जैनदर्शन पर किये गये आक्षेपों का उत्तर दिया है।

आचार्य आर्यनन्दि

जीवन-परिचय : तमिल प्रदेश में 'अज्जनन्दि' अर्थात् आर्यनन्दि नाम के प्रभावशाली आचार्य हुए हैं। उनका व्यक्तित्व महान था। सातवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में तमिल प्रदेश में जैन धर्म के अनुयायियों के विरुद्ध एक भयानक वातावरण उत्पन्न हुआ। परिणामस्वरूप वहाँ जैनधर्म का प्रभाव क्षीण हो गया और उनके सम्मान को ठेस पहुँची। ऐसे विषम समय में आर्यनन्दि आगे आये। उन्होंने समस्त तमिल प्रदेश में भ्रमण कर जैन धर्म के प्रभाव को पुन: स्थापित करने के लिए जगह-जगह जैन तीर्थंकरों की मूर्तियाँ स्थापित कराई। इससे आर्यनन्दि के साहस और विक्रम का पता चलता है।

इनका समय 8वीं, 9वीं शताब्दी है। इनका कार्यक्षेत्र मदुरा और त्रावणकोर आदि स्थान भी रहा है। आर्यनन्दि ने उत्तर और दक्षिण में कई स्थानों पर मूर्तियों का निर्माण कराया। यह कार्य महत्त्वपूर्ण तथा जैनधर्म की प्रसिद्धि के लिए था।

रचना-परिचय : आपकी एक भी रचना उपलब्ध नहीं है।

आचार्य अपराजितसूरि

जीवन-परिचय : अपराजितसूरि यापनीय संघ के विद्वान थे। वे चन्द्रनन्दि महाकर्मप्रकृत्याचार्य के प्रशिष्य और बलदेवसूरि के शिष्य थे। ये भारतीय आचार्यों के चूड़ामणि थे। जिनशासन का उद्धार करने में धीर, वीर तथा यशस्वी थे। इन्हें नागनन्दिगणि के चरणों की सेवा से ज्ञान प्राप्त हुआ था और श्रीनन्दिगणी की प्रेरणा से इन्होंने शिवार्य की भगवती आराधना की 'विजयोदया' नाम की टीका लिखी थी।

इनका अपरनाम श्रीविजय या विजयाचार्य था। पंडित आशाधरजी ने इनका 'श्रीविजय' नाम से ही उल्लेख किया है।

अपराजितसूरि की गुरु-परम्परा देखने से ज्ञात होता है कि इनका समय विक्रम की नवमी शताब्दी का हो सकता है।

रचना-परिचय : आपकी एक ही रचना प्राप्त होती है।

1. विजयोदया टीका : अपराजितसूरि ने शिवार्य की भगवती आराधना की 'विजयोदया' नाम की टीका लिखी है। यह टीका अनेक विशेषताओं को लिये हुए है। इसमें संन्यासमरण या समाधिमरण का विषय विशेष है।

आचार्य अमितगति प्रथम

जीवन-परिचय : जैन साहित्य में अमितगति नाम के दो आचार्यों के उल्लेख मिलते हैं। ये अमितगति प्रथम हैं जो नेमिषेण के गुरु तथा देवसेनसूरि के शिष्य हैं। ये ज्ञान और चारित्र की असाधारण मूर्ति थे। इनका व्यक्तित्व महान था।

अमितगति द्वितीय ने सुभाषितरत्नसन्दोह को विक्रम संवत् 1050 में पौष शुक्ल पंचमी के दिन समाप्त किया है और पंचसंग्रह को विक्रम संवत् 1073 में पूरा किया है, अतएव अमितगति प्रथम का समय इनसे दो पीढ़ी पूर्व होने से विक्रम संवत् 1000 निश्चित होता है।

रचना-परिचय : इनके द्वारा रचित एकमात्र ग्रन्थ योगसारप्राभृत है।

1. योगसारप्राभृत : योगसारप्राभृत बहुत महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है जो भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित हो चुका है। यह ग्रन्थ 9 अधिकारों में विभक्त है। इसमें सात तत्त्व और चारित्र आदि का वर्णन किया है। इन अधिकारों में योग और योग से सम्बन्ध रखने वाले आवश्यक विषयों का सुन्दर प्रतिपादन किया गया है। पूरा ग्रन्थ अध्यात्म रस से सराबोर है। उसके पढ़ने पर नयी अनुभूतियाँ सामने आती हैं। ग्रन्थ की भाषा सरल संस्कृत है। ग्रन्थ पर कुन्दकुन्दाचार्य के अध्यात्म ग्रन्थों का पूर्ण प्रभाव है। ग्रन्थ का अध्ययन और मनन जीवन की सफलता का कारण है। ग्रन्थ बहुत महत्त्वपूर्ण है।

आचार्य अमृतचन्द्रसूरि

जीवन-परिचय : आध्यात्मिक विद्वानों में आचार्य कुन्दकुन्द के पश्चात् आदरपूर्वक जिनका नाम लिया जाता है, वे आचार्य अमृतचन्द्रसूरि हैं, क्योंकि आचार्य कुन्दकुन्द के कंचन को कुन्दन बनानेवाले आचार्य अमृतचन्द्रसूरि ही हैं, जिन्होंने एक हजार वर्ष बाद आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थों पर टीकाएँ लिखकर उनकी गरिमा को जगत के सामने रखा।

आचार्य अमृतचन्द्रसूरि परम आध्यात्मिक सन्त, गहन तात्त्विक चिन्तक, रससिद्ध कवि, तत्त्वज्ञानी एवं सफल टीकाकार थे। मुनीन्द्र, आचार्य और सूरि जैसी गौरवशाली उपाधियों से इनका महान व्यक्तित्व सम्मानित था। पण्डित आशाधरजी ने गौरव के साथ उन्हें 'ठक्कुर' नाम से सम्मानित किया था।

इन आचार्य की विद्वत्ता, वाग्मिता और प्राञ्जल शैली अप्रतिम है। इनका परिचय किसी भी कृति में प्राप्त नहीं होता है। परन्तु टीकाओं के अन्त में जो संक्षिप्त परिचय दिया है उससे अवगत होता है कि ये बड़े नि:स्पृह आध्यात्मिक आचार्य थे।

आचार्य अमृतचन्द्रसूरि विक्रम की दशवीं शताब्दी के विशिष्ट विद्वान थे।

रचना-परिचय : अमृतचन्द्रसूरि की रचनाओं को दो कोटि में रखा जा सकता है—

(क) मौलिक रचनाएँ :

1. **पुरुषार्थसिद्ध्युपाय :** यह श्रावकाचार सम्बन्धी ग्रन्थ है। इसमें 226 पद्य आर्यावृत्त छन्द में लिखे गये हैं। प्रारम्भ के आठ पद्यों में ग्रन्थ की उत्थानिका दी गयी है। इस उत्थानिका में निश्चय और व्यवहार नय का स्वरूप, कर्मों का कर्त्ता और भोक्ता आत्मा, जीव का स्वभाव एवं पुरुषार्थसिद्ध्युपाय का अर्थ बतलाया है। ग्रन्थ पांच भागों में विभक्त है। इसमें श्रावकधर्म के वर्णन के साथ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र का सुन्दर कथन किया गया है।

2. **तत्त्वार्थसार :** आचार्य उमास्वामी (गृद्धपिच्छाचार्य) के तत्त्वार्थसूत्र के सार को लेकर आचार्य अमृतचन्द्र ने इस स्वतन्त्र ग्रन्थ की रचना की है। इसमें 226 श्लोक हैं। इसमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र के साथ-साथ सात तत्त्वों का भी वर्णन है। यह ग्रन्थ 9 अधिकारों में विभक्त है।

(ख) टीकाग्रन्थ :

1. **समयसार-टीका :** आचार्य अमृतचन्द्र की समयसार-टीका 'आत्मख्याति' के नाम से प्रसिद्ध है। आचार्य ने इसे प्रांजल शैली में लिखा है, इन्होंने गाथा के शब्दों का व्याख्यान न करके उसके अभिप्राय को अपनी परिष्कृत गद्यशैली में व्यक्त किया है। टीका के पद्य अलग से भी 'समयसार कलश' नाम से प्रसिद्ध हैं।

2. **प्रवचनसार-टीका :** प्रवचनसार की टीका का नाम तत्त्वप्रदीपिका है। यह टीका भी प्राञ्जलशैली में लिखी गयी है। इस टीका में भी आचार्य की आध्यात्मिक रसिकता, आत्मानुभव, प्रखरविद्वत्ता, वस्तुस्वरूप को तर्कपूर्वक सिद्ध करने की आसाधारण शक्ति, निश्चय-व्यवहार का क्रमबद्ध निरूपण आदि अनेक विशेषताएँ विद्यमान हैं।

3. **पंचास्तिकाय-टीका :** पंचास्तिकाय की 173 गाथाओं पर भी आचार्य अमृतचन्द्र ने टीका लिखी है जो उक्त दोनों ग्रन्थों के समान ही है। आचार्य अमृतचन्द्रसूरि ने पंचास्तिकाय के विषय को अपनी टीका में विस्तृत और स्पष्ट बनाने का पूर्ण प्रयास किया है। इस टीका का नाम 'तत्त्वदीपिका' है।

आचार्य रामसेन

जीवन-परिचय : आचार्य रामसेन ने अपना संक्षिप्त परिचय गुरुओं के नामोल्लेख के साथ दिया है। उन्होंने अपने विद्यागुरु और दीक्षागुरु का निर्देश इस प्रकार किया है कि वीरचन्द्र, शुभदेव, महेन्द्रदेव और विजयदेव विद्यागुरु हैं तथा नागसेन दीक्षागुरु हैं। रामसेन सेनगण के आचार्य हैं। आचार्य रामसेन का समय ई. सन् की 11वीं शताब्दी का उत्तरार्ध है। उनके समय की सिद्धि उनके गुरु नागसेन के समय से भी हो जाती है।

रचना-परिचय : आचार्य रामसेन का समय ई. सन् की 11वीं शताब्दी का उत्तरार्ध है। उनके समय की सिद्धि उनके गुरु नागसेन के समय से भी हो जाती है।

1. तत्त्वानुशासन : रामसेन द्वारा रचित ग्रन्थ तत्त्वानुशासन 258 संस्कृत पद्यों की महत्त्वपूर्ण रचना है। इसमें अध्यात्म विषय का सुन्दर प्रतिपादन है। यह भाषा और विषय दोनों ही दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है।

ग्रन्थकार ने अध्यात्म जैसे नीरस और कठोर विषय को सरल एवं सुगम बना दिया है। कर्मबन्ध के कारण मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र को हेय और दुख का हेतु बतलाया है और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को उपादेय और सुख का कारण बतलाया है।

इन्द्रनन्दि योगीन्द्र प्रथम

जीवन-परिचय : प्रस्तुत इन्द्रनन्दि योगीन्द्र वे हैं जो मंत्रशास्त्र के विशिष्ट विद्वान थे। ये वासवनन्दि के प्रशिष्य और बप्पनन्दि के शिष्य थे। इन्होंने ज्वालिनीकल्प नाम के मंत्रशास्त्र की रचना की है।

गोम्मटसार के कर्त्ता नेमिचन्द सिद्धान्तचक्रवर्ती ने इन्द्रनन्दि को गुरु रूप में स्मरण किया है। ये इन्द्रनन्दि वही हैं, जिनके दीक्षागुरु बप्पनन्दि और मन्त्रशास्त्र गुरु गुणनन्दि और सिद्धान्तशास्त्र गुरु अभयनन्दि हैं।

आचार्य इन्द्रनन्दि योगीन्द्र का समय ई. सन् की दशम शताब्दी का पूर्वार्द्ध है।

रचना-परिचय : इनके द्वारा रचित एक ही ग्रन्थ प्राप्त होता है।

1. ज्वालामालिनी : ज्वालामालिनीकल्प मंत्रशास्त्र का उत्कृष्ट ग्रन्थ है। प्रस्तुत ग्रन्थ दश परिच्छेदों में विभक्त है। इस ग्रन्थ की समाप्ति मान्यखेट में शक सं. 861 ई. (सन् 939) में अक्षयतृतीया के दिन हुई थी।

आचार्य महासेन

जीवन-परिचय : आचार्य महासेन लाटवर्गट या लाड़वागड़ संघ के आचार्य थे। प्रद्युम्नचरित की कारंजाभंडार में जो प्रशस्ति दी हुई है, उससे ज्ञात होता है कि लाटवर्गट संघ में सिद्धान्तों के पारगामी जयसेन मुनि हुए और उनके शिष्य गुणाकरसेन थे। इन्हीं गुणाकरसेन के शिष्य महासेनसूरि हुए, जो राजा मुंज द्वारा पूजित थे और सिन्धुराज ने उनके चरणकमलों की पूजा की थी।

आचार्य महासेन सिद्धान्तवादी, वाग्मी और कवि थे। यशस्वियों द्वारा मान्य और सज्जनों में अग्रणी थे। ये सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के स्वामी और भव्यरूपी कमलों को विकसित करनेवाले बान्धव थे।

'प्रद्युम्नचरित' की प्रशस्ति में काव्य के रचनाकाल का निर्देश नहीं किया, पर मुंज और सिन्धुल का निर्देश रहने से अभिलेख और इतिहास के साक्ष्य द्वारा समय-निर्णय करने की सुविधा प्राप्त है, जिसके आधार पर हम कह सकते हैं कि आचार्य महासेन का समय 10वीं शती का उत्तरार्द्ध है।

रचना-परिचय : महासेन ने प्रद्युम्नचरित काव्य की रचना की और राजा के अनुचर विवेकवान मधन ने इसे लिखकर कोविदजन (विद्वानों) को दिया।

प्रद्युम्नचरित के प्रत्येक सर्ग के अन्त में आनेवाली पुष्पिका में लिखा है कि- सिन्धुल के महामात्य पर्पट की प्रेरणा से ही प्रस्तुत काव्य निर्मित हुआ है।

1. प्रद्युम्नचरित : आचार्य महासेन के 'प्रद्युम्नचरित' महाकाव्य उपलब्ध में 14 सर्ग हैं। इसमें श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न कुमार का जीवन-परिचय अंकित किया गया है, जो कामदेव थे। इस काव्य की कथावस्तु का आधार हरिवंशपुराण है। काव्य का कथा भाग बड़ा ही सुन्दर एवं रस और अंलकारों से अलंकृत है। कथा-नायक का जीवन अत्यन्त पावन एवं प्रेरक रहा है।

आचार्य सोमदेवसूरि

जीवन-परिचय : आचार्य सोमदेवसूरि महान तार्किक, सरस साहित्यकार, कुशल राजनीतिज्ञ, प्रबुद्ध तत्त्वचिन्तक और उच्चकोटि के धर्माचार्य थे। ये नेमिदेव के शिष्य, यशोदेव के प्रशिष्य और महेन्द्रदेव के अनुज थे।

सोमदेव का संस्कृत भाषा पर विशेष अधिकार था। न्याय, व्याकरण, काव्य, छन्द, धर्म, आचार और राजनीति के वे प्रकाण्ड पंडित थे। महाकवि धर्मशास्त्रज्ञ और प्रसिद्ध दार्शनिक थे। सोमदेव की ख्याति उनके गद्य-पद्यात्मक काव्य यशस्तिलक और राजनीति की पुस्तक नीतिवाक्यामृत से है। उनके द्वारा रचित ग्रन्थ ही उनके वैदुष्य के परिचय के लिए पर्याप्त हैं। जैन सिद्धान्तों के अधिकारी विद्वान होते हुए भी वे दर्शनों में दक्ष समालोचक हैं।

उनके लिए विशेष उपाधियाँ दी गयी हैं, जैसे-स्याद्वादाचल सिंह, तार्किक चक्रवर्ती, वादीभ पंचानन, वाक्कल्लोलपयोनिधि, कविकुलराजकुंजर अनवद्यगद्यपद्यविद्याधरचक्रवर्ती। ये विशेष उपाधियाँ उनकी उत्कृष्ट प्रज्ञा और प्रभावकारी व्यक्तित्त्व के परिचायक हैं।

सोमदेवसूरि का समय यशस्तिलक में शक संवत् 881 (ई. सन् 949) दिया है। अत: सोमदेव ई. सन् 959 अर्थात् दशम शती के आचार्य हैं।

रचना-परिचय : आचार्य सोमदेवसूरि की तीन रचनाएँ उपलब्ध हैं—

1. **नीतिवाक्यामृत :** नीतिवाक्यामृत राजनीति का कौटिल्य के अर्थशास्त्र की तरह उत्कृष्ट ग्रन्थ है। इसमें राजा, मंत्री, कोषाध्यक्ष और शासन-संचालन के मौलिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। नीतिवाक्यामृत मूलरूप से बम्बई से सन् 1891 में प्रकाशित हुआ था। सन् 1922 में माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला बम्बई से संस्कृत टीका सहित प्रकाशित हुआ। सन् 1950 में पण्डित सुन्दरलाल शास्त्री ने हिन्दी अनुवाद के साथ इसका प्रकाशन किया। नीतिवाक्यामृत पर दो टीकाएँ हैं।

यह ग्रन्थ संस्कृत साहित्य का अनुपम रत्न है।

2. **यशस्तिलक चम्पू :** आचार्य सोमदेव का दूसरा ग्रन्थ यशस्तिलक चम्पू है। इसकी कथावस्तु में महाराज यशोधर का चरित है, जो आठ अध्यायों में विभक्त है। यशस्तिलक की यह कथा अत्यन्त लोकप्रिय रही है। संस्कृत और अपभ्रंश के अनेक कवियों ने इस कथा को ग्रहण भी किया है। यही कारण है कि संस्कृत और अपभ्रंश भाषा में अनेक यशोधर काव्य लिखे गये हैं।

3. **अध्यात्मतरंगिणी :** इस ग्रन्थ का दूसरा नाम 'योगमार्ग' भी है। यह अध्यात्म विषयक रचना है। इसमें 40 पद्य हैं। यह ग्रन्थ स्तोत्रशैली में लिखा गया है। ध्यान का भी वर्णन इसमें संक्षेप में मिलता है। रचना हृदय को छूने वाली और उपदेशप्रद है।

इनके अतिरिक्त, युक्तिचिन्तामणिस्तव, त्रिवर्ग महेन्द्रमातलिसंजल्प, षण्णवतिप्रकरण और स्याद्वादोपनिषद की भी रचना की है, जो अभी उपलब्ध नहीं है।

आचार्य अनन्तकीर्ति

जीवन-परिचय : आचार्य अनन्तकीर्ति अपने समय के प्रसिद्ध तार्किक विद्वान थे। इनके नाम का उल्लेख अनेक आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में किया है।

अनन्तकीर्ति का समय ई. सन 990 से पूर्व अर्थात् नवम शताब्दी का उत्तरार्ध माना जाता है।

रचना-परिचय : अनन्तकीर्ति के चार ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है, परन्तु इनमें से दो ही प्रकाशित हैं—

1. **सर्वज्ञसिद्धि :** अनन्तकीर्ति ने बृहत् और लघु ये दो सर्वज्ञसिद्धि नामक ग्रन्थ लिखे हैं। ये दोनों ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। इन ग्रन्थों में आचार्य ने सर्वज्ञ की सिद्धि कर अर्हन्त को सर्वज्ञ बतलाया है।

आचार्य हरिषेण

जीवन-परिचय : हरिषेण नाम के अनेक विद्वान हुए हैं। उनसे प्रस्तुत हरिषेण भिन्न हैं। ये हरिषेण पुन्नाट संघ के आचार्य थे। इन्होंने हरिवंश पुराण की रचना से 148 वर्ष बाद उसी वर्द्धमानपुर (हरिवंश पुराण की रचना का स्थान) में कथाकोश ग्रन्थ की रचना की थी।

ग्रन्थ प्रशस्ति में उन्होंने अपनी गुरु-परम्परा इस प्रकार दी है—मौनिभट्टारक हरिषेण, भरतसेन और हरिषेण। हरिषेण ने अपने गुरु भरतसेन को छन्द, अलंकार, काव्य, नाटक आदि शास्त्रों का ज्ञाता, काव्य का रचयिता, वैयाकरण, तर्कनिपुण और तत्त्वार्थवेदी बतलाया है। हरिषेण पुन्नाट संघ के आचार्य हैं और इसी पुन्नाट संघ में हरिवंश पुराण के कर्त्ता जिनसेन प्रथम भी हुए हैं।

आचार्य हरिषेण का समय ई. सन् की 10 वीं शताब्दी का मध्यभाग सिद्ध होता है। क्योंकि इनके द्वारा रचित कथाकोश ग्रन्थ शक संवत् 853, विक्रम संवत् 988 (ई. सन् 931) में रचा गया है।

रचना-परिचय : आचार्य हरिषेण के द्वारा लिखित एक ही ग्रन्थ है।

1. **कथाकोश :** आचार्य हरिषेण ने पद्यबद्ध वृहत् कथाकोश ग्रन्थ लिखा है। इस कथाकोश ग्रन्थ में छोटी-बड़ी सब मिलाकर 157 कथाएँ हैं और ग्रन्थ का प्रमाण अनुष्टुप छन्द में 12500 श्लोक हैं। इन कथाओं में ऐतिहासिक व्यक्तियों के सम्बन्ध में आराधना या व्यक्तित्त्व निर्माण सम्बन्धी किसी आख्यान को प्रकट किया है।

आचार्य देवसेन

जीवन-परिचय : देवसेन नाम के कई आचार्यों के उल्लेख मिलते हैं। प्रस्तुत देवसेन वे हैं जिन्होंने विक्रम संवत् 990 में दर्शनसार नामक ग्रन्थ की रचना की थी। आचार्य देवसेन अपने समय के अच्छे विद्वान थे।

दर्शनसारादि के कर्ता देवसेन 9वीं शताब्दी के विद्वान थे।

रचना-परिचय : देवसेन के द्वारा रचित ग्रन्थ निम्न हैं—

1. **दर्शनसार :** इन्होंने धारा नगरी के पार्श्वनाथ मन्दिर में रहते हुए संवत् 990 माघ शुक्ल दशमी के दिन 'दर्शनसार' ग्रन्थ की रचना की है। दर्शनसार में अनेक मतों तथा संघों की उत्पत्ति आदि का वर्णन है। देवसेन ने पूर्वाचार्यकृत गाथाओं का संकलन किया है। इस लघुकाय ग्रन्थ में कुल 51 गाथाएँ हैं।

2. **भावसंग्रह :** इस ग्रन्थ में 701 गाथाएँ हैं। इसमें चौदह गुणस्थानों का अवलम्बन लेकर विविध विषयों का निरूपण किया गया है।

3. **आराधनासार :** यह ग्रन्थ 115 प्राकृत-गाथाओं में रचा गया है। इसमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र और तपरूप चार आराधनाओं के कथन का सार निश्चय और व्यवहार दोनों रूप से दिया है।

4. **तत्त्वसार:** यह एक लघु अध्यात्म ग्रन्थ है, जिसमें 74 गाथाएँ हैं। इसमें बतलाया है कि जिसके न क्रोध है, न मान है, न माया है और न लोभ है, न शल्य है, न द्वेष है, न लेश्या है, जो जन्म-जरा-मरण से रहित है, वही निरंजन आत्मा है।

5. **लघुनयचक्र :** इस ग्रन्थ में 87 गाथाओं में नय का स्वरूप, उपयोगिता एवं इसके भेदों का सुन्दर वर्णन मिलता है।

6. **आलापपद्धति :** यह संस्कृत-गद्य में रचित छोटी-सी रचना है। इसमें गुण, पर्याय, स्वभाव, प्रमाण, नय, निक्षेप एवं अध्यात्म नयों का कथन किया गया है। यह ग्रन्थ दस अधिकारों में विभक्त है। इसके अलावा एक और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ श्रुतभवन दीपक नयचक्र है।

मुनि रामसिंह

जीवन-परिचय : मुनि रामसिंह ने अपना कोई परिचय नहीं दिया और न ही अपने गुरु का कोई उल्लेख किया है। ग्रन्थ में रचनाकाल का उल्लेख भी नहीं है। परन्तु फिर भी ये बहुत विख्यात लेखक हैं।

मुनि रामसिंह का समय 10वीं शताब्दी हैं।

रचना-परिचय : मुनि रामसिंह की एकमात्र कृति दोहापाहुड है।

1. दोहापाहुड : इसमें 222 दोहे हैं। दोहे भावपूर्ण और सरस हैं। पूरे ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय अध्यात्म-चिन्तन है। आत्मानुभूति और सदाचरण के बिना कर्मकाण्ड व्यर्थ है। सच्चा सुख इन्द्रियनिग्रह और आत्मध्यान करने में है। मोक्षमार्ग के लिए विषयों का परित्याग करना आवश्यक है। ग्रन्थ में अध्यात्म के साथ रहस्यवाद भी दिखाई देता है। हिन्दी-साहित्य के पूरे सन्त-काव्य पर इस ग्रन्थ का गहरा प्रभाव दिखाई देता है।

मुनि पद्मकीर्ति

जीवन-परिचय : मुनि पद्मकीर्ति सेनसंघ के विद्वान थे। सेनसंघ अत्यन्त प्रतिभाशाली और नियमों का धारक श्रेष्ठ संघ था।

पद्मकीर्ति के गुरु जिनसेन, दादागुरु माधवसेन और परदादागुरु चन्द्रसेन थे।

मुनि पद्मकीर्ति जी द्वारा रचित ग्रन्थ पासणाहचरिउ की समाप्ति शक संवत् 999 कार्तिक मास की अमावस्या को हुई है, अतः इनका समय 10वीं शती माना जा सकता है।

रचना-परिचय : मुनि पद्मकीर्ति द्वारा रचित ग्रन्थ एक ही उपलब्ध है — 'पासणाहचरिउ'।

1. पासणाहचरिउ : यह ग्रन्थ 18 सन्धियों में विभक्त है। जिनमें 23वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ का जीवन-परिचय अंकित किया गया है। कथानक आचार्य गुणभद्र के उत्तरपुराण के अनुसार है। यह ग्रन्थ जैनसिद्धान्त और काव्य दोनों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

आचार्य वादिराजसूरि

जीवन-परिचय : आचार्य वादिराजसूरि दार्शनिक, चिन्तक और महाकवि के रूप में प्रसिद्ध हैं। ये उच्चकोटि के तार्किक होने के साथ महाकाव्य के प्रणेता भी हैं। इनकी तुलना जैन कवियों में सोमदेवसूरि से और संस्कृत-कवियों में नैषधकार श्रीहर्ष से की जा सकती है।

आचार्य वादिराजसूरि द्रमिल या द्रविड़ संघ के आचार्य थे। इसमें भी एक संघ नन्दिसंघ था, जिसकी अंरुगल शाखा के आप आचार्य थे। अंरुगल किसी स्थान या ग्राम का नाम है, उसकी मुनिपरम्परा अंरुगलान्वय नाम से प्रसिद्ध हुई थी।

आचार्य वादिराजसूरि श्रीपालदेव के प्रशिष्य और मतिसागर के शिष्य थे। वादिराज उनका मूल नाम नहीं है किन्तु एक पदवी है। सम्भवत: अधिक प्रचलित होने के कारण ही वे इस नाम से प्रसिद्ध हो गये।

चालुक्य नरेश जयसिंह देव की सभा में इनका बड़ा सम्मान था और इनकी गणना प्रख्यात वादियों में की जाती थी। मल्लिषेण-प्रशस्ति के अनुसार ये राजा जयसिंह द्वारा पूजित थे। इन्हें महान वादी-विजेता और कवि माना जाता है।

आचार्य वादिराजसूरि, षट्तर्कषण्मुख, स्याद्वादविद्यापति और जगदेकमल्ल आदि उपाधियाँ हैं।

आचार्य वादिराजसूरि ने अपने ग्रन्थों की प्रशस्तियों में रचना-काल का निर्देश किया है। उन्होंने अपना ग्रन्थ पार्श्वनाथचरित 'सिंहचक्रेश्वर' या 'चालुक्य-चक्रवर्ती' जयसिंह की राजधानी में निवास करते हुए शक संवत् 947 (ई. सन् 1025) कार्तिक शुक्ल तृतीया को पूर्ण किया था। अत: आचार्य वादिराजसूरि का समय दसवीं शती का उत्तरार्द्ध सिद्ध होता है।

रचना-परिचय : आचार्य वादिराजसूरि की निम्न पाँच कृतियाँ उपलब्ध हैं—

1. पार्श्वनाथचरित : श्रेष्ठ महाकाव्य है। इसमें बारह सर्ग हैं। यह माणिकचन्द्र

ग्रन्थमाला से प्रकाशित हो चुका है। इसमें अनेक पूर्ववर्ती कवियों का उल्लेख है। कवि ने पार्श्वनाथ की प्रसिद्ध कथावस्तु को ही अपनाया है। यह कथावस्तु उत्तरपुराण में निबद्ध है। संस्कृत भाषा में स्वतन्त्र काव्यरूप में पार्श्वनाथचरित को सर्वप्रथम गुम्फित करने का श्रेय वादिराज को ही है।

2. यशोधरचरित : यशोधरचरित हिंसा का दोष और अहिंसा का प्रभाव दिखलाने के लिए बहुत लोकप्रिय काव्य रहा है। कवि वादिराज ने इसी लोकप्रिय कथानक को लेकर प्रस्तुत काव्य की रचना की है। इस काव्य में चार सर्ग हैं। यशोधरचरित की कथावस्तु यशस्तिलकचम्पू की कथावस्तु ही है। यह एक छोटा-सा खंडकाव्य है, जिसके पद्यों की संख्या 296 हैं और इसे टी. एस. कुप्पुस्वामी शास्त्री ने प्रकाशित किया था।

3. एकीभावस्तोत्र : यह पच्चीस श्लोकों का सुन्दर स्तवन है, जो 'एकीभावं गत इव मया'—से प्रारम्भ हुआ है। भक्ति रस से भरा हुआ यह स्तोत्र नित्य पठनीय है।

4. न्यायविनिश्चय विवरण : अकलंकदेव ने न्यायविनिश्चय नामक तर्कग्रन्थ लिखा है। इस ग्रन्थ में 480 कारिकाएँ और तीन प्रस्ताव हैं। आचार्य वादिराजसूरि ने इस ग्रन्थ पर अपना विवरण लिखा है, जो बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। यह 20,000 श्लोक प्रमाण है और भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित है।

5. प्रमाणनिर्णय : यह प्रमाण शास्त्र का लघुकाय स्वतन्त्र ग्रन्थ है। इसमें प्रमाण, प्रत्यक्ष, परोक्ष और आगम नाम के चार अध्याय हैं। यह ग्रन्थ माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला से मूलरूप में प्रकाशित हो चुका है।

6. अध्यात्माष्टक : यह आठ पद्यों का स्तोत्र है, माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला से प्रकाशित है, इसमें अध्यात्म का विषय निरूपित है।

दिवाकरनन्दि सिद्धान्तदेव

जीवन-परिचय : दिवाकरनन्दि सिद्धान्तदेव भट्टारक चन्द्रकीर्ति के प्रधान शिष्य थे। ये सिद्धान्तशास्त्र के अच्छे विद्वान थे और वस्तुतत्त्व का प्रतिपादन करने में निपुण थे। दिवाकरनन्दि को सिद्धान्तरत्नाकर कहा जाता था। इनके शिष्य मुनि सकलचन्द्र थे।

दिवाकरनन्दि का समय 1077 ई. के लगभग बतलाया गया है।

रचना-परिचय : सिद्धान्तदेव ने तत्त्वार्थसूत्र की कन्नड़ भाषा में ऐसी कृति बनाई थी, जो बालकों तथा विद्वानों —दोनों को तत्त्वज्ञान करानेवाली थी।

आचार्य वीरनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती

जीवन-परिचय : वीरनन्दि सिद्धान्तवक्रवर्ती नाम के दो आचार्य मुख्य हुए हैं। उनमें से आचारसार के रचयिता वीरनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती मूलसंघ पुस्तकगच्छ और देशीयगण के आचार्य हैं। इनके गुरु मेघचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती थे।

वीरनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती का समय ई. सन् की 12वीं शताब्दी का मध्यभाग है।

रचना-परिचय : वीरनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती की एक ही कृति प्राप्त है—

1. आचारसार : इसमें मुनियों के आचार का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। ग्रन्थ 12 अध्यायों में विभक्त है।

आचार्य वीरनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती

जीवन-परिचय : आचार्य वीरनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती विशिष्ट दार्शनिक और प्रतिभा सम्पन्न कवि थे। आप नन्दिसंघ और देशीयगण के आचार्य थे। ये मुनि विबुध गुणनन्दि के प्रशिष्य और अभयनन्दि के शिष्य थे, जो मुनियों के द्वारा वन्दनीय थे। इन्होंने मिथ्यावाद को नष्ट किया था। ये सम्पूर्ण गुणों में समृद्ध थे, मिथ्यावाद और भव्य लोगों के अद्वितीय बन्धु थे। आचार्य वीरनन्दि अनेक गुणों के धारक थे। इन्होंने सम्पूर्ण वाङ्मय का अध्ययन कर लिया था और ये कुतर्कों का नाश करने वाले थे।

वीरनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती 11वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के विद्वान हैं। इनके द्वारा रचित ग्रन्थ चन्द्रप्रभचरित विक्रम संवत् 1082 से पूर्व की रचना है।

रचना-परिचय : आपकी एकमात्र कृति चन्द्रप्रभचरित काव्य है।

1. चन्द्रप्रभचरित : इस ग्रन्थ की कथावस्तु का आधार उत्तरपुराण है। इस ग्रन्थ में आचार्य ने भगवान चन्द्रप्रभ के चरित्र का वर्णन किया है। यह ग्रन्थ 18 सर्गों में विभक्त है। जिसकी श्लोक-संख्या 1691 है। यह काव्य विभिन्न अलंकारों से सम्पन्न है। यह रचना अत्यन्त सरस और प्रसाद गुण से भरपूर है।

नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती

जीवन-परिचय : नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती चामुण्डराय के गुरु थे जिसने श्रवणबेलगोला की विश्वविख्यात प्रतिमा बाहुबली का निर्माण किया था। नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती मूलसंघ देशीयगण के विद्वान अभयनन्दि के शिष्य थे। अभयनन्दि उस समय के बड़े सैद्धान्तिक विद्वान थे। उनके शिष्य वीरनन्दि और इन्द्रनन्दि थे। ये दोनों नेमिचन्द्र के ज्येष्ठ गुरुभाई थे। नेमिचन्द्र ने अपने विद्यागुरु कनकनन्दि का भी उल्लेख किया है।

नेमिचन्द्र आचार्य अत्यन्त प्रभावशाली और सिद्धान्तशास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान थे। आपने स्वयं गोम्मटसार की गाथा 397 में लिखा है कि—

जिस प्रकार चक्रवर्ती अपने चक्ररत्न से भारतवर्ष के छह खंडों को बिना किसी विघ्न बाधा के अपने अधीन करता है, उसी तरह मैंने (नेमिचन्द्र ने) अपनी बुद्धि-रूपी चक्र से षट्खंडागम-सिद्धान्त को सम्यक्रीति से अपने अधीन किया है।

आचार्य नेमिचन्द्र को सिद्धान्तचक्रवर्ती की उपाधि दी गयी थी, सिद्धान्तग्रन्थों के अभ्यासी को सिद्धान्तचक्रवर्ती का पद प्राचीन समय से ही दिया जाता रहा है। सिद्धान्तग्रन्थों के अधिकारी विद्वान होने के कारण आचार्य नेमिचन्द्र ने धवला सिद्धान्त का मन्थन कर गोम्मटसार और जयधवला टीका का मन्थन कर लब्धिसार ग्रन्थ की रचना की है।

आचार्य नेमिचन्द्र का सुनिश्चित समय विक्रम की 11वीं शताब्दी है।

रचना-परिचय : आचार्य नेमिचन्द्र की निम्नलिखित रचनाएँ प्रसिद्ध हैं—

1. **गोम्मटसार :** यह एक सैद्धान्तिक ग्रन्थ है। यह दो भागों में विभक्त है—जीवकांड और कर्मकांड। जीवकांड में 734 गाथाएँ हैं और कर्मकांड में 962 गाथाएँ हैं। इस ग्रन्थ पर दो संस्कृत-टीकाएँ भी लिखी गयी हैं।

2. **त्रिलोकसार :** इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ में 1018 गाथाएँ हैं। यह करणानुयोग

का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसका आधार 'तिलोयपण्णत्ती' और 'तत्त्वार्थवार्तिक' है। इसमें तीन लोक के स्वरूप का विस्तार से वर्णन है।

3. **लब्धिसार :** लब्धिसार में तीन अधिकार और 649 गाथाएँ हैं। इनमें बतलाया गया है कि कर्मों को काटकर जीव कैसे मुक्ति प्राप्त कर सकता है। अथवा अपने शुद्ध स्वरूप में स्थित हो सकता है। इसका प्रधान आधार कषायपाहुड और उसकी जयधवला टीका है।

4. **क्षपणासार :** क्षपणासार में 653 गाथाएँ हैं। इनमें कर्मों को क्षय करने की विधि का निरूपण किया गया है।

आचार्य माणिक्यनन्दि

जीवन-परिचय : आचार्य माणिक्यनन्दि जैन न्यायशास्त्र के महापंडित थे। इनके द्वारा रचित परीक्षामुखसूत्र जैन न्याय का प्रथम सूत्रग्रन्थ है। आचार्य माणिक्यनन्दि नन्दिसंघ के प्रमुख आचार्य और धारा नगरी के निवासी थे। वे व्याकरण और सिद्धान्त के ज्ञाता होने के साथ दर्शनशास्त्र के विशिष्ट विद्वान थे। उस समय धारा नगरी विद्या का केन्द्र बनी हुई थी। बाहर के अनेक विद्वान वहाँ आकर अपनी विद्या का विकास करते थे। वहाँ अनेक विद्यापीठ थे, जिनमें रहकर छात्र विद्याध्ययन करके विद्वान बनते थे। अनेक विद्वान आचार्य जैन धर्म के विकास और प्रचार कार्य में संलग्न रहते थे। माणिक्यनन्दि अत्यन्त प्रतिभाशाली और विभिन्न दर्शनों के ज्ञाता थे। माणिक्यनन्दि गणी रामनन्दि के शिष्य थे, जो भारतीय दर्शन के साथ जैनदर्शन के प्रकांड पंडित थे। इनके शिष्य नयनन्दि थे।

आचार्य माणिक्यनन्दि का समय विक्रम सम्वत् की 10वीं शताब्दी माना जाता है।

रचना -परिचय : माणिक्यनन्दि का एकमात्र ग्रन्थ 'परीक्षामुख' मिलता है।

1. परीक्षामुख : इस ग्रन्थ का नामकरण बौद्धदर्शन के हेतुमुख और न्यायमुख जैसे ग्रन्थों के अनुकरण पर मुखान्त नाम पर किया गया है। परीक्षामुख में प्रमाण और प्रमाणाभास का विशद वर्णन किया गया है। जिस प्रकार दर्पण में हमें अपना प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखलाई पड़ता है, उसी प्रकार परीक्षामुखरूपी दर्पण में प्रमाण और प्रमाणाभास को स्पष्ट रूप से ज्ञात किया जा सकता है। यह ग्रन्थ तत्त्वार्थसूत्र की तरह सूत्रात्मक शैली में लिखा गया है। इसके सूत्र सरल, सरस और गम्भीर अर्थवाले हैं। इसकी भाषा प्राञ्जल और सुबोध है। समस्त ग्रन्थ में 218 सूत्र हैं। इस ग्रन्थ पर अनेक टीकाएँ लिखी गयी हैं। जिनमें—प्रभाचन्द्राचार्य की प्रमेयकमलमार्त्तण्ड, लघु अनन्तवीर्य की प्रमेयरत्नमाला विशेष उल्लेखनीय हैं।

आचार्य नयनन्दि

जीवन-परिचय : आचार्य नयनन्दि अपने युग के प्रसिद्ध आचार्य हैं। इनके गुरु का नाम माणिक्यनन्दि त्रैविद्य था। नयनन्दि ने अपने ग्रन्थ 'सुदंसणचरिउ' में अपनी गुरु-परम्परा अंकित की है। यथा—

भगवान महावीर के शासन काल में कुन्दाकुन्दान्वय की क्रमागत परम्परा में नक्षत्र नाम के आचार्य हुए हैं। तत्पश्चात् पद्मनन्दि, विष्णुनन्दि और नन्दनन्दि, विशाखनन्दि, रामनन्दि, माणिक्यनन्दि और नयनन्दि नाम के आचार्य हुए हैं। नयनन्दि का समय विक्रम संवत् की 11वीं शताब्दी का अन्तिम और 12वीं शती का प्रारम्भिक भाग है।

'सुदंसणचरिउ' का रचनाकाल स्वयं ही ग्रन्थकर्त्ता ने अंकित किया है। यह ग्रन्थ विक्रम संवत् 1100 में धारा नगरी के एक जैन मन्दिर में रचा गया है।

रचना-परिचय : आचार्य नयनन्दि के द्वारा लिखित रचनाएँ निम्न हैं :

1. सुदंसणचरिउ : 'सुदंसणचरिउ' अपभ्रंशभाषा का एक खंडकाव्य है, जो महाकाव्यों की श्रेणी में रखने योग्य है। ग्रन्थ का चरित्र भाग रोचक और आकर्षक है। काव्यकला की दृष्टि से भी यह ग्रन्थ उच्चकोटि का है। इसमें पञ्चनमस्कार मन्त्र का फल प्राप्त करनेवाले सेठ सुदर्शन के चरित्र का वर्णन किया गया है। पूरा ग्रन्थ पूरा 12 सन्धियों में विभक्त है।

2. सयलविहिविहाण : सयलविहिविहाण (सकलविधिविधान) काव्य में 58 सन्धियाँ हैं पर यह ग्रन्थ अपूर्ण ही उपलब्ध है। यह ग्रन्थ इतिहास की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। संसार की असारता और मनुष्य की उन्नति-अवनति का भी इसमें हृदयस्पर्शी चित्रण आया है।

आचार्य प्रभाचन्द्र

जीवन-परिचय : आचार्य माणिक्यनन्दि के विद्या-शिष्यों में प्रभाचन्द्र प्रमुख रहे हैं। वे उनके 'परीक्षामुख' नामक सूत्र-ग्रन्थ के कुशल टीकाकार भी हैं। वे दर्शनशास्त्र के अतिरिक्त सिद्धान्त के भी अच्छे विद्वान थे।

आचार्य प्रभाचन्द्र ने धारा नगरी में रहते हुए दर्शनशास्त्र का अध्ययन किया, और धारा नगरी के अधिपति भोज के द्वारा प्रतिष्ठा भी प्राप्त की।

आचार्य प्रभाचन्द्र का वैदुष्य एवं व्यक्तित्व अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इनके ग्रन्थों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि इन्होंने वैदिक और अवैदिक दर्शनों का गहन अध्ययन किया था। ये किसी भी विषय का समर्थन प्रचुर युक्तियों से करते हैं। इनकी प्रतिपादन शैली एवं विचारधारा अपूर्व है।

डॉ. दरबारीलालजी कोठिया के सप्रमाण अनुसन्धान के अनुसार प्रभाचन्द्र और माणिक्यनन्दि की समसामयिकता प्रकट होती है और उनमें परस्पर साक्षात् गुरु-शिष्यत्व भी सिद्ध होता है; अत: आचार्य प्रभाचन्द्र का समय ई. सन् की 11वीं शती का माना जाता है।

रचना-परिचय : आचार्य प्रभाचन्द्र की निम्नलिखित रचनाएँ मान्य हैं—

1. प्रमेयकमलमार्त्तंड (परीक्षामुख व्याख्या)
2. न्यायकुमुदचन्द्र (लघीयस्त्रय व्याख्या)
3. तत्त्वार्थवृत्तिपदविवरण (सर्वार्थसिद्धि व्याख्या)
4. शाकटायनन्यास (शाकटायनव्याकरण व्याख्या)
5. शब्दाम्भोजभास्कर (जैनेन्द्रव्याकरण व्याख्या)
6. प्रवचनसारसरोज भास्कर (प्रवचनसार व्याख्या)
7. गद्यकथाकोश (स्वतन्त्र रचना)
8. रत्नकरण्डकश्रावकाचार (टीका)
9. समाधितन्त्र (टीका)

10. क्रियाकलाप (टीका)

11. आत्मानुशासन (टीका)

12. महापुराण (टिप्पणी)

उपरोक्त ग्रन्थों एवं टीका ग्रन्थों के आधार पर हम कह सकते हैं कि आचार्य प्रभाचन्द्र न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म और व्याकरण आदि अनेक विषयों के प्रखर विद्वान थे।

आचार्य अमितगति (द्वितीय)

जीवन-परिचय : आचार्य अमितगति माथुर संघ के आचार्य थे। यह संघ काष्ठासंघ की एक शाखा है। इस संघ की उत्पत्ति वीरसेन के शिष्य कुमारसेन द्वारा हुई है।

अमितगति द्वितीय ने धर्मपरीक्षा ग्रन्थ में जो प्रशस्ति दी है, उसके अनुसार इनकी गुरुपरम्परा इस प्रकार है—आचार्य वीरसेन के शिष्य देवसेन, देवसेन के शिष्य अमितगति प्रथम, इनके शिष्य नेमिषेण, नेमिषेण के शिष्य माधवसेन और माधवसेन के शिष्य अमितगति (द्वितीय) हुए हैं।

आचार्य अमितगति (द्वितीय) बहुश्रुत विद्वान थे। उन्होंने विविध विषयों पर ग्रन्थों का निर्माण किया है जिससे ज्ञात होता है कि ये काव्य, न्याय, व्याकरण, आचारप्रभृति आदि अनेक विषयों के विद्वान थे। आपकी कविता सरल और वस्तुतत्त्व की विवेचना करने वाली है।

अमितगति आचार्य के द्वारा लिखित ग्रन्थों के आधार पर इनका समय विक्रम संवत् की 11वीं शताब्दी है।

रचना-परिचय : आचार्य द्वारा लिखित निम्नलिखित रचनाएँ हैं—

1. सुभाषितरत्नसंदोह : सुभाषितरत्नसन्दोह सुभाषित रूपी रत्नों का भंडार है। कवि ने सुभाषित लिखने का उद्देश्य बताते हुए लिखा है कि—ये सुभाषित श्लोक चेतन-अचेतन मन के अज्ञान को दूर कर भक्तों के हृदय को प्रसन्न करते हैं। जिस प्रकार सूर्य की किरणें अन्धकार का नाश कर समस्त पदार्थों को प्रकाशित करती हैं। यह ग्रन्थ विक्रम संवत् 1050 में पौष सुदी पंचमी को समाप्त हुआ है। इसमें 922 पद्य हैं। सभी पद्य सुन्दर सूक्तियों से विभूषित हैं और याद करने योग्य हैं।

2. धर्मपरीक्षा : संस्कृत-साहित्य में यह अपने ढंग की अद्भुत व्यंग्यप्रधान रचना है। इसमें पौराणिक ऊटपटांग कथाओं और मान्यताओं को बड़े ही मनोरंजक रूप में अविश्वसनीय सिद्ध किया है। समूचा ग्रन्थ 1945 श्लोकों में सुन्दर कथा

के रूप में निबद्ध है। इसे कवि ने दो महीने में ही बनाया था।

3. पंचसंग्रह : यह प्राकृत पंचसंग्रह ग्रन्थ का अनुवाद जैसा है। इसमें कुल 1375 पद्य हैं। इसकी रचना कवि ने विक्रम संवत् 1073 में की है।

4. उपासकाचार : यह अमितगति-श्रावकाचार के नाम से प्रसिद्ध है। उपलब्ध श्रावकाचारों में यह ग्रन्थ बहुत विशद, सुगम और विस्तृत है। इसमें 1352 पद्य और 15 अध्याय हैं।

5. आराधना : शिवार्य द्वारा रचित प्राकृत आराधना ग्रन्थ का यह संस्कृत रूपान्तर है। कवि ने इस रूपान्तर को चार महीने में ही पूर्ण किया है। इसमें दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप—इन चारों आराधनाओं का प्राकृत आराधना के समान ही वर्णन किया है। इस ग्रन्थ में देवसेन से लेकर अमितगति तक की गुरुपरम्परा भी दी गयी है।

6. भावना द्वात्रिंशतिका : यह 32 पद्यों का एक छोटा-सा प्रकरण है। इसे सामायिक पाठ भी कहा जाता है। इसकी कविता बड़ी सुन्दर और कोमल है। इसे पढ़ने से बड़ी शान्ति मिलती है। इसका हिन्दी-अँग्रेजी आदि अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। बहुत से लोग सामायिक के समय इसका पाठ करते हैं। हृदय को पवित्र बनाने के लिए एक अच्छा काव्य है। इसको पढ़ने से पवित्र और उच्च भावनाओं का संचार होता है।

7. तत्त्व भावना : यह 120 पद्यों का छोटा-सा प्रकरण है। यह ग्रन्थ सूरत से प्रकाशित है।

आचार्य नयसेन

जीवन-परिचय : आचार्य नयसेन त्रैविद्यचक्रवर्ती नरेन्द्रसेन के शिष्य थे। नरेन्द्रसेन अपने समय के बहुत प्रभावशाली विद्वान हुए हैं।

आचार्य नयसेन का जन्मस्थान धारवाड़ जिले का मूलगुन्दा नामक तीर्थस्थान है। नयसेन मुनि उच्चकोटि के तपस्वी और द्वादशांग शास्त्र के विद्वान थे। यह संस्कृत, तमिल और कन्नड़ के धुरन्धर विद्वान थे। ये विविध उपाधियों से अलंकृत थे। ये मल्लिषेण के गुरु जिनसेन के सधर्मा थे।

इनके ग्रन्थ धर्मामृत में ग्रन्थ-रचना का समय दिया हुआ है। इससे इनका समय ई. सन् की 12वीं शती का पूर्वार्द्ध सिद्ध होता है।

रचना-परिचय : आचार्य नयसेन के दो ग्रन्थों का निर्देश उपलब्ध होता है—

1. धर्मामृत : धर्मामृत में 14 रोचक कथाएँ हैं। इन कथाओं द्वारा धर्मतत्त्व का उपदेश दिया गया है। आचार्य ने सम्यग्दर्शन और उसके आठ अंग और पाँच व्रतों की कथाओं के माध्यम से श्रावकाचार का विस्तृत वर्णन किया है। इस ग्रन्थ की भाषा कन्नड़ी है, जो बहुत ही सुन्दर, ललित और शुद्ध है।

इस ग्रन्थ की रचना ई. सन् 1112 के लगभग हुई है।

2. कन्नड़ भाषा का व्याकरण : दूसरा ग्रन्थ कन्नड़ भाषा का व्याकरण है, जो वर्तमान में उपलब्ध नहीं है।

आचार्य ब्रह्मदेवसूरि

जीवन-परिचय : अध्यात्म शैली के टीकाकारों में आचार्य ब्रह्मदेवसूरि का नाम उल्लेखनीय है। ये जैनसिद्धान्त के विद्वान हैं। इन्होंने स्वसमय और परसमय का अच्छा अध्ययन किया है। 'ब्रह्म' उनकी उपाधि भी बतलाई जाती है।

अनेक प्रमाणों के आधार पर आचार्य ब्रह्मदेवसूरि का समय ई. सन् की 12वीं शती सिद्ध होता है।

रचना-परिचय : ब्रह्मदेव के द्वारा लिखित निम्न रचनाएँ मानी जाती हैं—

1. बृहद्द्रव्यसंग्रह की टीका,
2. परमात्मप्रकाश की टीका
3. तत्त्वदीपक
4. ज्ञानदीपक
5. प्रतिष्ठातिलक
6. विवाहपटल
7. कथाकोश

परन्तु इन रचनाओं में से केवल दो रचनाएँ ही उपलब्ध हैं।

1. **बृहद्द्रव्यसंग्रह की टीका :** बृहद्द्रव्यसंग्रह की टीका में अनेक सैद्धान्तिक एवं आध्यात्मिक विषयों का समावेश है। यह टीका आश्रम नगर के मुनिसुव्रत चैत्यालय में लिखी गयी है। यह टीका आगम और अध्यात्म का सुन्दर समन्वय है। इस टीका में अनेक ग्रन्थ और ग्रन्थकारों का भी वर्णन है, जो इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

2. परमात्मप्रकाश वृत्ति : परमात्मप्रकाश की यह टीका भी बृहद्द्रव्यसंग्रह की टीका के समान आध्यात्मिक और विस्तृत है। भावनात्मक ग्रन्थ होने के कारण टीकाकार ने आत्मा, भक्ति, वीतरागता एवं सरागता का विस्तारपूर्वक कथन किया है।

आचार्य रामसेन

जीवन-परिचय : आचार्य रामसेन नाम के कई आचार्य और विद्वान हुए हैं। प्रस्तुत रामसेनाचार्य तत्त्वानुशासन के कर्त्ता हैं। ये मूलसंघ सेनगण के आचार्य हैं।

इनके विद्यागुरु वीरचन्द्र, शुभदेव, महेन्द्रदेव और विजयदेव हैं तथा दीक्षागुरु उच्चकोटि के चारित्रधारी कीर्तिमान नागसेन हैं।

अनेक ग्रन्थों के उदाहरणों और प्रमाणों से यह स्पष्ट है कि रामसेन का समय ई. सन् की 11वीं शताब्दी का उत्तरार्ध है।

रचना-परिचय : इनके द्वारा लिखित एक ही ग्रन्थ उपलब्ध है।

1. तत्त्वानुशासन : इसमें 259 पद्य हैं। यह ग्रन्थ अध्यात्म विषय का है और स्वानुभूति से युक्त है। इस ग्रन्थ में सात तत्त्वों में से बन्ध और मोक्ष तत्त्व की चर्चा विस्तार से की है। ध्यान का वर्णन भी विस्तारपूर्वक किया गया है।

आचार्य भट्टवोसरि

जीवन-परिचय : आचार्य भट्टवोसरि ज्योतिष और निमित्तशास्त्र के आचार्य हैं। श्रवणबेलगोला के अभिलेख 55 में उल्लेख है कि दामनन्दि के शिष्य भट्टवोसरि ने महावादी विष्णुभट्ट को वाद के शास्त्रार्थ में पराजित किया था।

वोसरि के पिता का नाम दुर्लभराज, दादा का नाम नारायण और बड़े भाई का नाम कोक था। यह ब्राह्मण थे। जैनगुरुओं के प्रभाव से ये जैन धर्म में दीक्षित हो गये थे।

आचार्य दामनन्दि भोजराज के समकालीन थे, अत: उनके शिष्य का समय भी ई. सन् की 11वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध सिद्ध होता है।

रचना-परिचय : आचार्य भट्टवोसरि के द्वारा लिखित एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'आयज्ञानतिलक' है—

1.आय-ज्ञान-तिलक : यह ग्रन्थ प्रश्नविद्या से सम्बन्ध रखनेवाला महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें कुल 415 गाथाएँ और 25 अध्याय हैं। प्रश्नशास्त्र की दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें आठ आयों (ध्वज, धूम, सिंह, गज, खर, श्वान, वृष और ध्वांक्ष) द्वारा प्रश्नों के शुभाशुभ फल को जानने और बतलाने की कला का विस्तार से वर्णन किया है। इस ग्रन्थ पर स्वयं ग्रन्थकार की रची हुई संस्कृत-टीका भी है।

आचार्य नरेन्द्रसेन द्वितीय

जीवन-परिचय : नरेन्द्रसेन नाम के कई आचार्यों का उल्लेख ग्रन्थों में मिलता है, परन्तु हम यहाँ 'नरेन्द्रसेन द्वितीय' का परिचय लिख रहे हैं—

गुणचन्द्र देव ने नरेन्द्रसेन को व्याकरण का पंडित बतलाया है। शिलालेख में लिखा है कि चन्द्र, कातन्त्र, जैनेन्द्र, शब्दानुशासन, पाणिनी और इन्द्र आदि व्याकरण ग्रन्थ नरेन्द्रसेन के लिए एक अक्षर के समान हैं।

नरेन्द्रसेन व्याकरण के साथ न्याय, दर्शन और काव्यशास्त्र के भी विद्वान थे।

नरेन्द्रसेन का समय प्राय: निश्चित ही है। इन्होंने विक्रम संवत् 1787 में ज्ञानयन्त्र की प्रतिष्ठा करवायी थी और विक्रम संवत् 1790 में पुष्पदन्त के 'जसहरचरिउ' की प्रतिलिपि स्वयं की थी। अत: इनका समय विक्रम संवत् 1787 से 1790 (ई. सन् 1730-1733 ई.) है।

रचना-परिचय : नरेन्द्रसेन की एक ही रचना है।

प्रमाण-प्रमेय-कलिका : यह न्याय विषयक एक लघु सुन्दर कृति है, जो न्याय के अभ्यासियों के लिए बहुत उपयोगी है। इसमें प्रमाण और प्रमेय- इन दो विषयों पर सरल संक्षिप्त और विशद रूप से चिन्तन किया गया है। भाषा-शैली सरल एवं प्रवाहपूर्ण है।

आचार्य मल्लिषेण

जीवन-परिचय : कवि-चक्रवर्ती मल्लिषेण अपने युग के प्रख्यात आचार्य हैं। ये उभयभाषा (प्राकृत और संस्कृत भाषा) के विद्वान, कवि-चक्रवर्ती, कविशेखर, गरुड़ और मंत्रवाद में श्रेष्ठ, वक्ता आदि पदवियों से अलंकृत थे। उन्होंने अपने को सकलागम (सभी शास्त्रों) में निपुण, लक्षणवेदी, तर्कवेदी और मन्त्रवाद में कुशल सूचित किया है। वे उच्चश्रेणी के कवि थे। वे विविध विषयों के विद्वान थे, फिर भी मन्त्रवादी के रूप में विशेष प्रसिद्ध थे।

आचार्य मल्लिषेण उन अजितसेन की परम्परा में हुए हैं, जिसमें चामुण्डराय के गुरु हुए थे और जिन्हें नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने भुवनगुरु कहा है। मल्लिषेण के गुरु जिनसेन हैं और जिनसेन के गुरु कनकसेन तथा कनकसेन के गुरु अजितसेन हैं।

आचार्य मल्लिषेण विक्रम की 11वीं शताब्दी के अन्त और 12वीं शताब्दी के प्रारम्भ के विद्वान थे, क्योंकि इन्होंने अपना 'महापुराण' शक सं. 969 सन् 1047 (विक्रम संवत् 1104) में ज्येष्ठ सुदी पंचमी के दिन मूलगुन्द नामक जैन मन्दिर में रहकर पूरा किया था।

रचना-परिचय : कवि-चक्रवर्ती मल्लिषेण की निम्नलिखित रचनाएँ हैं—

1. महापुराण : यह संस्कृत भाषा में दो हजार श्लोकों का ग्रन्थ है। इसमें त्रेसठ शलाका पुरुषों की कथा संक्षिप्त रूप में दी है। इस ग्रन्थ की एक प्रति कन्नड़ी लिपि में कोल्हापुर के लक्ष्मीसेन भट्टारक के मठ में मौजूद है। यह ग्रन्थ अभी अप्रकाशित है।

2. नागकुमार काव्य : यह पाँच सर्गों का छोटा-सा खंड काव्य है, जो 507 श्लोकों में पूर्ण हुआ है। इस काव्य में नागकुमार का जीवन वर्णित है। यह काव्य बहुत सरल, सरस और प्रवाहमान है।

3. भैरवपद्मावती कल्प : यह चार सौ श्लोकों का मन्त्रशास्त्र का प्रसिद्ध

ग्रन्थ है। इसमें दश अधिकार हैं। यह बन्धुषेण की संस्कृत टीका के साथ प्रकाशित हो चुका है।

4. सरस्वतीमन्त्रकल्प : यह मन्त्रशास्त्र का छोटा-सा ग्रन्थ है। इसके पद्यों की संख्या 75 है। यह भैरव पद्मावती कल्प के साथ प्रकाशित हो चुका है।

5. ज्वालिनीकल्प : यह भी मन्त्रग्रन्थ है। इसकी प्रति सेठ माणिकचन्द्र जी, बम्बई के संग्रह में है। इसमें 14 पत्र हैं और पाण्डुलिपि विक्रम संवत् 1562 की लिखी हुई है। यह ज्वालामालिनीकल्प से भिन्न है।

6. कामचाण्डालीकल्प : यह भी मन्त्रसम्बन्धी ग्रन्थ है। इस कृति की पाण्डुलिपि बम्बई के सरस्वतीभवन में है।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त प्रवचनसार टीका, पंचास्तिकाय टीका, वज्रपंजरविधान, ब्रह्म विद्या आदि कई ग्रन्थ मल्लिषेण के नाम से उल्लिखित मिलते हैं, परन्तु निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि ये ग्रन्थ इनके द्वारा रचित हैं।

आचार्य शुभचन्द्र

जीवन-परिचय : शुभचन्द्र नाम के अनेक आचार्य हुए हैं। हम यहाँ 'ज्ञानार्णव' ग्रन्थ के रचयिता आचार्य शुभचन्द्र का परिचय दे रहे हैं।

ये शुभचन्द्र किस संघ या गण के थे और इनकी गुरु परम्परा क्या थी—इसके सम्बन्ध में कुछ भी जानकारी प्राप्त नहीं होती, परन्तु विश्वभूषण भट्टारक ने 'भक्तामरचरित्र' नामक संस्कृत ग्रन्थ की उत्थानिका में शुभचन्द्र और भर्तृहरि की एक लम्बी कथा दी है। कथानुसार—शुभचन्द्र तथा भर्तृहरि उज्जयिनी के राजा सिन्धुल के पुत्र थे और सिन्धुल के पैदा होने के पहले उनके पिता सिंह ने मुञ्ज को एक खेत में पड़े हुए देखा और उसे पाल लिया था। सिंह ने उस पुत्र का नाम मुञ्ज रखा। मुञ्ज ने वयस्क होकर थोड़े ही दिनों में सकल शास्त्र और कलाओं का अध्ययन कर लिया। तदनन्तर महाराज ने रत्नावली नामक कन्या के साथ उसका विवाह कर दिया। कुछ दिनों के अनन्तर महाराज सिंह की रानी ने गर्भ धारण किया और एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम सिन्धुराज रखा गया। सिन्धुराज के वयस्क होने पर मृगावती नामक राजकन्या से उसका विवाह हुआ। कुछ समय बाद इन दोनों के यहाँ दो पुत्रों का जन्म हुआ। ज्येष्ठ का नाम शुभचन्द्र और कनिष्ठ का नाम भर्तृहरि रखा गया। बचपन से ही दोनों तत्त्वज्ञानी थे। कुछ समय बाद इन दोनों को ज्ञात हुआ कि राजा मुञ्ज राज्य के लोभ से हमारा वध करना चाहते हैं तो वे दोनों संसार से विरक्त हो वन की ओर चल पड़े।

महाबुद्धिमान शुभचन्द्र ने मुनिराज के समक्ष दिगम्बरी दीक्षा धारण कर ली और घोर तपस्या करने लगे। पर भर्तृहरि एक तपस्वी की सेवा में लग गये, उन्होने बारह वर्ष तक अनेक विद्याओं की साधना की। उन्होंने तप द्वारा सौ विद्याएँ और रसतुम्बी प्राप्त की। इस रस के माध्यम से ताँबा सुवर्ण हो जाता था। भर्तृहरि ने स्वतन्त्र स्थान में रसतुम्बी के प्रभाव से अपना महत्त्व और अपना नाम बनाया।

एक दिन भर्तृहरि अपने भाई शुभचन्द्र के पास आए, और उन्हें अपनी विद्या

और तप का महत्त्व बताने लगे, परन्तु शुभचन्द्र ने भर्तृहरि को समझाते हुए कहा– यदि सोना ही बनाना श्रेष्ठ है तो हमने घर क्यों छोड़ा, इसकी प्राप्ति तो गृहस्थ में भी हो सकती थी।

शुभचन्द्र के उपदेश से भर्तृहरि भी मुनिमार्ग में दीक्षित हो गये। भर्तृहरि को मुनिमार्ग में दृढ़ करने और सच्चे योग का ज्ञान कराने के लिए शुभचन्द्र ने 'ज्ञानार्णव' ग्रन्थ की रचना की।

आचार्य शुभचन्द्र का समय विक्रम संवत् 11वीं शती है।

रचना-परिचय : शुभचन्द्र की एकमात्र रचना 'ज्ञानार्णव' है।

1. ज्ञानार्णव : ज्ञानार्णव ग्रन्थ 42 सर्गों में विभक्त है। लेखक ने इसके विषय को महाकाव्य के समान सर्गों में विभक्त किया है। इस ग्रन्थ में पाँच महाव्रत, तप और ध्यान का वर्णन किया है। आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान इन चारों का वर्णन विस्तार से एवं सरल भाषा में किया गया है। ध्यान के विषय को समझने के लिए यह ग्रन्थ विशेष महत्त्वपूर्ण है।

आचार्य पद्मनन्दि द्वितीय

जीवन-परिचय : आचार्य पद्मनन्दि द्वितीय मूलसंघ देशीयगण के विद्वान थे। इनके गुरु वीरनन्दि थे। आचार्य पद्मनन्दि का इससे अधिक परिचय ग्रन्थों में नहीं मिलता है।

आचार्य पद्मनन्दि द्वितीय का समय ई. सन् की 11वीं शती है।

रचना-परिचय : आचार्य पद्मनन्दि द्वितीय के द्वारा रचित लोकप्रिय रचना 'पद्मनन्दि पञ्चविंशति' है—

1. पद्मनन्दि पञ्चविंशति : यह ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण है। इस ग्रन्थ पर संस्कृत-कन्नड़ टीकाएँ भी लिखी गई हैं। इस ग्रन्थ में 26 लघु कृतियों का संकलन किया गया है। अनेक विषयों का वर्णन होने से यह ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण है।

पद्मप्रभ मलधारी देव

जीवन-परिचय : पद्मप्रभ मलधारी देव कुन्दुकुन्द के मूलसंघ, पुस्तकगच्छ और देशीयगण के विद्वान वीरनन्दि व्रतीन्द्र के शिष्य थे। मलधारी इनकी उपाधि थी। यह उपाधि अनेक विद्वान आचार्यों के साथ लगी रहती थी।

पद्मप्रभ ने अपने को सुकविजन-पयोजमित्र, पञ्चेन्द्रियप्रसरवर्जित और गात्रमात्रपरिग्रह—इन विशेषणों वाला बताया है। इन तीन विशेषणों से ज्ञात होता है कि पद्मप्रभ अच्छे कवियों के प्रेरक थे, पंचेन्द्रियों के प्रसार से रहित थे, जितेन्द्रिय थे तथा शरीरमात्र परिग्रह के धारी थे, नग्न दिगम्बर थे।

पद्मप्रभ मलधारी देव का समय ई. सन् 1103 के पूर्व माना जाता है। परन्तु कुछ प्रमाणों के आधार पर पद्मप्रभ का समय ई. सन् की 12वीं शती भी सिद्ध होता है।

रचना-परिचय : इनके द्वारा रचित ग्रन्थ निम्न हैं :

1. नियमसार टीका : आचार्य कुन्दकुन्द के द्वारा रचित नियमसार पर इन्होंने एक संस्कृत टीका बनाई है, जिसका नाम 'तात्पर्यवृत्ति' है।

'तात्पर्यवृत्ति' में पद्मप्रभ ने यथास्थान अनेक विद्वानों और उनके ग्रन्थों के पद्यों को उनके नाम के साथ ग्रहण किया है और स्वयं भी अनेक सुन्दर पद्य बनाकर उपसंहार के रूप में दिये हैं। इस टीका में नियमसार के विषय का अच्छा स्पष्टीकरण है।

2. पार्श्वनाथ स्तोत्र : इस स्तोत्र में 9 पद्य हैं। स्तोत्र में मरुभूति और कमठ के भवों की चर्चा करते हुए पार्श्वनाथ के अन्तरंग और बहिरंग गुणों का वर्णन किया गया है।

बालचन्द्र अध्यात्मी

जीवन-परिचय : बालचंद्र अध्यात्मी मूलसंघ, देशीयगण और पुस्तकगच्छ के विद्वान थे। इनके गुरु नयकीर्ति थे, जो गुणचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती के शिष्य थे। इनके भाई का नाम दामनन्दी था। अनेक शिलालेखों में बालचन्द्र की स्तुति के पद्य मिलते हैं।

इनका समय ईस्वी सन् 1170 माना जाता है।

रचना-परिचय : बालचन्द्र अध्यात्मी के द्वारा रचित 5 टीकाएँ उपलब्ध हैं—

1. समयसार टीका
2. प्रवचनसार टीका
3. पंचास्तिकाय टीका
4. परमात्मप्रकाश टीका
5. तत्त्वरत्न प्रदीपिका (तत्त्वार्थसूत्रटीका)

ये सभी टीकाएँ बड़ी सुन्दर और अध्यात्म विषय पर विस्तृत प्रकाश डालती हैं। सभी का विषय मूल ग्रन्थों के अनुसार ही है।

आचार्य वीरनन्दि

जीवन-परिचय : आचार्य वीरनन्दि मेघचन्द्र त्रैविद्य देव के शिष्य थे। वे अपने समय के अच्छे विद्वान थे। कहा है—आचार्य वीरनन्दि चतुरता रूपी लक्ष्मी के स्वामी हैं, अनुपम गुणों से अलंकृत हैं, सिद्धान्त शास्त्रों को जाननेवाले विद्वानों में श्रेष्ठ हैं और पृथ्वी-मंडल के लोगों को इच्छित फल देनेवाले उत्तम चिन्तामणि हैं।

आचार्य वीरनन्दि का समय विक्रम की 12वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध और 13वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है।

रचना-परिचय : आचार्य वीरनन्दि द्वारा रचित एक ही ग्रन्थ उपलब्ध है।

1. आचारसार : 'आचारसार' संस्कृत भाषा का एक अपूर्व ग्रन्थ है। इसमें 'मूलाचार' ग्रन्थ के समान मुनियों की क्रियाओं का, उनके आचार-विचार का वर्णन किया गया है। साथ ही अन्य आवश्यक विषयों का भी समावेश किया गया है। इस ग्रन्थ में 12 अधिकार हैं। इस ग्रन्थ पर आचार्य वीरनन्दि ने स्वयं एक कन्नड़ टीका भी लिखी है, जो अभी प्रकाशित नहीं हुई है।

आचार्य गणधरकीर्ति

जीवन-परिचय : गणधरकीर्ति मुनि गुजरात के निवासी थे। इन्होंने अपनी गुरु परम्परा प्रशस्ति में बताया है कि आचार्य पुष्पदन्त के प्रशिष्य और कुवलयचन्द के शिष्य थे।

इनका समय 12वीं शताब्दी माना जाता है।

रचना-परिचय : आचार्य द्वारा रचित ग्रन्थ एक ही है—

1. ध्यानविधि : गणधरकीर्ति महाराज ने किन्हीं सोमदेव को ज्ञान देने के लिए और उनके सन्देह को दूर करने के लिए 'ध्यानविधि' नामक 40 पद्यों वाली रचना लिखी है। रचना का नाम 'अध्यात्मतरंगिणी' भी है। इसमें भगवान आदिनाथ की ध्यानावस्था का वर्णन करते हुए ध्यानों का स्वरूप और विधि का वर्णन है।

वहाँ शुभतुंग देव के द्वारा निर्मित 'वसति' अर्थात् जैन मन्दिर में, जहाँ वीरसेनाचार्य ने धवला टीका लिखी थी, वहीं पर गणधरकीर्ति ने यह टीका विक्रम संवत् 1189 में चैत्र शुक्ल पंचमी रविवार के दिन पूर्ण की थी। उस समय गुजरात के चालुक्य वंशीय राजा जयसिंह का राज्यकाल था।

आचार्य माइल्लधवल

जीवन-परिचय : द्रव्यस्वभावप्रकाशक नयचक्र के कर्त्ता माइल्लधवल हैं, जो देवसेन के शिष्य थे। माइल्लधवल का किञ्चित् भी परिचय हमें प्राप्त नहीं है। उन्होंने स्वयं भी ग्रन्थ में अपना परिचय, गुरु-परम्परा आदि कुछ भी नहीं दिया है।

माइल्लधवल द्वारा लिखित ग्रन्थ के आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि इनका काल 12वीं शताब्दी का मध्यकाल है।

रचना-परिचय : आपके द्वारा रचित एक ही ग्रन्थ है।

द्रव्य-स्वभाव-प्रकाशक नयचक्र : माइल्लधवल ने कुन्दकुन्दाचार्य के शास्त्र से सार ग्रहण करके अपने और दूसरों के उपकार के लिए द्रव्य-स्वभाव-नयचक्र की रचना की है।

इस ग्रन्थ में 425 गाथाएँ और 12 अधिकार हैं। इन बारह अधिकारों में गुण, पर्याय, द्रव्य, पंचास्तिकाय, सात तत्त्व, नौ पदार्थ, प्रमाण, नय, निक्षेप और निश्चय-व्यवहार नय के भेद से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन विषयों का सरल भाषा में वर्णन है।

आचार्य पद्मनन्दि प्रथम

जीवन-परिचय : अचार्य पद्मनन्दि प्रथम वीरनन्दि के प्रशिष्य और बलनन्दि के शिष्य हैं। इन्होंने विजयगुरु के पास ग्रन्थों का अध्ययन किया था। आचार्य पद्मनन्दि राग-द्वेष से रहित और श्रुतसागर के पारगामी थे। वे आचार्य पद्मनन्दि प्रथम प्राकृतभाषा और सिद्धान्तशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान भी हैं।

आचार्य पद्मनन्दि प्रथम 11वीं शताब्दी के विद्वान हैं।

रचना-परिचय : पद्मनन्दि प्रथम के द्वारा लिखित दो रचनाओं का उल्लेख मिलता है—

1. जम्बूद्वीपपण्णत्ति : पद्मनन्दि ने श्री विजय गुरु के प्रसाद से जम्बूद्वीपपण्णत्ति की रचना माघनन्दि के शिष्य सकलचन्द्र और उनके शिष्य श्रीनन्दि के लिए की है। इस ग्रन्थ में 13 अधिकार हैं और 2427 गाथाएँ हैं। ग्रन्थ का मुख्य विषय मध्यलोक के मध्यवर्ती जम्बूद्वीप का वर्णन है। जम्बूद्वीप के वर्णन में भरत-ऐरावत आदि क्षेत्रों, हिमवान आदि पर्वतों, गंगा-सिन्धु आदि नदियों, पद्म महापद्म आदि समुद्रों का वर्णन है। यह ग्रन्थ भूगोल-खगोल का संक्षिप्त वर्णन करता है।

2. धम्मरसायण : पद्मनन्दि की दूसरी रचना धम्मरसायण है। इस ग्रन्थ में 193 गाथाएँ हैं। यह ग्रन्थ माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला से सिद्धान्तसार के अन्तर्गत प्रकाशित हो चुका है। इस ग्रन्थ में धर्म की महिमा विस्तार से बताई गयी है। यथा—धर्म त्रिलोकबन्धु है, धर्म शरण है। धर्म से ही मनुष्य त्रिलोक में पूज्य होता है। धर्म से दिव्यरूप और आरोग्य प्राप्त होता है। धर्म के महत्त्व के साथ अधर्म का फल, नरकादि के दुख, सर्वज्ञ की परीक्षा और सागार-अनगार (श्रावक-श्रमण) धर्म का भी संक्षिप्त परिचय वर्णित है।

आचार्य दुर्गदेव

जीवन-परिचय : श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्परा के साहित्य में दुर्गदेव नाम के तीन आचार्यों का उल्लेख मिलता है। प्रस्तुत दुर्गदेव दिगम्बर परम्परा के आचार्य हैं। इनके गुरु का नाम संयमदेव था। संयमदेव भी संयमसेन के शिष्य थे तथा संयमसेन के गुरु का नाम माधवचन्द्र था। दुर्गदेव विशुद्ध चारित्रवाले, ज्ञानरूपी जल से प्रक्षालित बुद्धिवाले, वाद-विवाद में देश भर के विद्वानों को पराजित करनेवाले, एवं सम्पूर्ण शास्त्रों के विद्वान थे।

दुर्गदेवाचार्य की रचनाओं के आधार पर ज्ञात होता है कि वे ई. सन् की 11वीं शती के विद्वान थे।

रचना-परिचय : दुर्गदेवाचार्य की निम्नलिखित रचनाएँ उपलब्ध हैं—

1. रिष्टसमुच्चय : 'रिष्टसमुच्चय' ग्रन्थ की रचना विक्रम संवत् 1089 श्रावण शुक्ल एकादशी शुक्रवार को लक्ष्मीनिवास राजा के राज्य में कुम्भनगर के शान्तिनाथ जिनालय में की गयी थी। इसमें 261 गाथाएँ हैं। इसमें मनुष्य की मृत्यु के समय का वर्णन किया गया है। अर्थात् इससे हम किस व्यक्ति की आयु कितने दिन, माह, वर्ष शेष हैं—यह संकेतों के आधार पर जान सकते हैं।

2. मरणकंडिका : इस ग्रन्थ में 146 गाथाएँ हैं, जो रिष्टसमुच्चय ग्रन्थ की गाथाओं से मिलती है। इस ग्रन्थ का विषय भी 'रिष्टसमुच्चय' ग्रन्थ के समान ही है।

3. अर्घकांड : इस ग्रन्थ में 149 गाथाएँ और दस अध्याय हैं। इसकी रचना भी शौरसेनी प्राकृत में हुई है। यह व्यापारादि में तेजी-मन्दी ज्ञात करने का अपूर्व ग्रन्थ है। धन, धान्य, सुकाल एवं दुष्काल, वृष्टि, अनावृष्टि एवं अतिवृष्टि आदि जानने में सहायक ग्रन्थ है। ग्रन्थ छोटा होने पर भी उपयोगी है।

4. मन्त्रमहोदधि : दुर्गदेवाचार्य मन्त्रशास्त्र के अच्छे ज्ञाता थे। उनका यह ग्रन्थ मन्त्रशास्त्र सम्बन्धी ही है। इसकी भाषा भी प्राकृत है।

आचार्य जिनचन्द्र

जीवन-परिचय : आचार्य जिनचन्द्र सिद्धान्तशास्त्रों के विद्वान रहे हैं। वे भास्करनन्दि के गुरु हैं, जिनका उल्लेख श्रवणबेलगोला के 55वें शिलालेख में आया है। वे आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती के पश्चात् ही हुए हैं।

जिनचन्द्राचार्य का समय 11वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध या 12वीं शताब्दी का पूर्वार्ध माना जाता है।

रचना-परिचय : आचार्य जिनचन्द्र का एकमात्र ग्रन्थ 'सिद्धान्तसार' ही उपलब्ध है—

1. सिद्धान्तसार : सिद्धान्तसार ग्रन्थ प्राकृत भाषा में है। इस ग्रन्थ पर संस्कृत भाष्य भी उपलब्ध है, जो ज्ञानभूषण द्वारा रचित है। इसका प्रकाशन माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला से 'सिद्धान्तसारादिसंग्रह' के रूप में हो चुका है। इसमें 89 गाथाएँ हैं। आचार्य ने इस ग्रन्थ में 14 मार्गणाओं और 14 गुणस्थानों का वर्णन किया है। यह ग्रन्थ छोटा अवश्य है, परन्तु इसमें सिद्धान्त के विषयों का पर्याप्त वर्णन है।

आचार्य हस्तिमल्ल

जीवन-परिचय : जिस प्रकार श्वेताम्बर सम्प्रदाय में रामचन्द्र नाटककार के रूप में प्रसिद्ध हैं, उसी प्रकार दिगम्बर सम्प्रदाय में आचार्य हस्तिमल्ल प्रसिद्ध हैं। हस्तिमल्ल सेनसंघ के आचार्य हैं और ये वीरसेन-जिनसेन की परम्परा में हुए हैं। ये अत्यन्त प्रतिभाशाली और बहुशास्त्रज्ञ विद्वान हैं। हस्तिमल्ल ब्राह्मण थे और इनके पिता का नाम गोविन्दभट्ट था। ये दक्षिण भारत के निवासी थे। इन्होंने स्वामी समन्तभद्र के प्रभाव से मिथ्यात्व का त्याग कर जैनधर्म ग्रहण किया था। गोविन्दभट्ट के छह बेटे थे, छहों कवीश्वर और विद्वान थे। आचार्य हस्तिमल्ल बहुभाषाविद्, कामशास्त्र, सिद्धान्त तर्क एवं विविध शास्त्रों के ज्ञाता थे।

आचार्य हस्तिमल का समय विक्रम संवत् 1217-1237 तक माना जाता है।

रचना-परिचय : उभय भाषा कवि चक्रवर्ती आचार्य हस्तिमल के निम्नलिखित चार नाटक और एक पुराण ग्रन्थ प्राप्त है—

1. विक्रान्त कौरव : इस नाटक में छह अंक हैं। इसमें महाराज सोमप्रभ के पुत्र कौरवेश्वर का काशी नरेश अकम्पन की पुत्री सुलोचना के साथ स्वयंवरविधि से विवाह सम्पन्न होने की कथावस्तु वर्णित है।

2. मैथिलीकल्याणम् : यह पाँच अंकों का नाटक है। इसमें बताया गया है कि वसंतोत्सव के अवसर पर सीता उपवन में झूला झूलते समय राम के अपूर्व सौन्दर्य का दर्शन कर अभिभूत हो जाती हैं और राम भी सीता के दर्शन से प्रेम में आकृष्ट हो जाते हैं। वन में पुन: सीता और राम का साक्षात्कार होता है। इस प्रकार कवि ने स्वयंवर के पूर्व राम और सीता के मिलनाकर्षण का सुन्दर चित्रण किया है।

3. अञ्जना-पवनंजय : इस नाटक में चार अंक हैं। विद्याधर राजा प्रह्लाद

के पुत्र पवनंजय एवं विद्याधर कुमारी अञ्जना के विवाह का वर्णन है। साथ ही पवनंजय द्वारा अञ्जना के त्याग का वर्णन है। बहुत वर्षों बाद इन दोनों का पुनः मिलन होता है। इस प्रकार यह नाटक अंजना पवनंजय की प्रसिद्ध कहानी पर आधारित है।

4. सुभद्रा नाटिका : इस नाटिका में चार अंक हैं। महारानी वेलाती, महाराज भरत और सुभदा के प्रेम में विघ्न डालती है। सुभद्रा और भरत का प्रेमाकर्षण दिन-रात बढ़ता जाता है। अन्त में नमि अपनी बहिन सुभद्रा का विवाह भरत महाराज के साथ यह कहकर सम्पन्न करते हैं कि ज्योतिषियों के अनुसार सुभद्रा का विवाह जिसके साथ होगा, वह चक्रवर्ती बनेगा।

5. आदिपुराण : जैन सिद्धान्त भवन आरा ग्रन्थालय में इस ग्रन्थ की पांडुलिपि विद्यमान है। इसकी कथावस्तु जिनसेन के आदिपुराण के समान ही है।

आचार्य रविचन्द्र

जीवन-परिचय : आचार्य रविचन्द्र अपने को मुनीन्द्र कहते हैं। उनका निवासस्थान कर्नाटक प्रान्त के अन्तर्गत 'पनसोज' नाम का स्थान है। कर्नाटक के शिलालेखों में रविचन्द्र का नाम कई स्थानों पर आया है। आचार्य रविचन्द्र को जैन आगम का पाण्डित्य प्राप्त था।

रविचन्द्र का समय ई. सन् की 12वीं शताब्दी का अन्तिम पाद या 13वीं शती का प्रथम पाद (चरण) माना जाता है।

रचना-परिचय : आचार्य रविचन्द्र की एकमात्र रचना 'आराधना-सार-समुच्चय' है।

आराधना-सार-समुच्चय : रविचन्द्र का आराधना-सार-समुच्चय संस्कृत में लिखा गया महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक्तप—इन चारों आराधनाओं का वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थ में 252 श्लोक हैं। इस ग्रन्थ का सम्पादन-अनुवाद डॉ. शुद्धात्मप्रकाश जैन ने किया है और प्रकाशन सोमैया संस्थान, विद्याविहार, मुम्बई से हुआ है।

आचार्य कनकनन्दि

जीवन-परिचय : सिद्धान्त-ग्रन्थों के रचयिता के रूप में कनकनन्दि का नाम नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती के समान आदरणीय है, क्योंकि कनकनन्दि आचार्य को भी सिद्धान्तचक्रवर्ती कहा गया है, लेकिन इनका विशेष परिचय उपलब्ध नहीं होता।

कनकनन्दि का समय 10वीं शताब्दी का अन्तिम भाग और 11वीं शताब्दी का प्रारम्भ माना जाता है।

रचना-परिचय : आचार्य ने सिद्धान्त सम्बन्धी एक ग्रन्थ की रचना की है—

1. विस्तरसत्त्वत्रिभंगी : आचार्य कनकनन्दि ने इन्द्रनन्दि गुरु के पास समस्त सिद्धान्त को सुनकर 'सत्त्वस्थान' ग्रन्थ लिखा है। यह जैन सिद्धान्त भवन आरा में उपलब्ध है। यह सिद्धान्त सम्बन्धी ग्रन्थ है। इसकी गाथाएँ नेमिचन्द्राचार्य ने अपने गोम्मटसार में भी सम्मिलित की हैं।

आचार्य वसुनन्दि प्रथम

जीवन-परिचय : वसुनन्दि नाम के अनेक आचार्य हुए हैं। वसुनन्दि प्रथम ने प्रतिष्ठासंग्रह की रचना संस्कृत भाषा में की है और श्रावकाचार या उपासकाध्ययन की रचना प्राकृत भाषा में की है, अत: स्पष्ट है कि वे दोनों भाषाओं के ज्ञाता थे। आचार्य वसुनन्दि को उत्तरवर्ती आचार्यों ने सैद्धान्तिक उपाधि प्रदान की है।

आचार्य वसुनन्दि ने आचार्य नयनन्दि को अपने दादागुरु के रूप में और आचार्य नेमिचन्द्र को गुरु के रूप में स्मरण किया है।

आचार्य वसुनन्दि ने किसी भी ग्रन्थ में समय नहीं दिया है, परन्तु उनकी रचनाओं का उल्लेख 13वीं शताब्दी के विद्वान पंडित आशाधर ने अपने 'सागारधर्मामृत' की टीका में किया है। इससे इनका समय 13वीं शताब्दी के पूर्व निश्चित है। अन्य प्रमाणों के आधार पर यह निश्चित होता है कि इनका समय ई. सन् की 11वीं शताब्दी का अन्तिम चरण या 12वीं शताब्दी का प्रथम चरण है।

रचना-परिचय : आचार्य वसुनन्दि प्रथम के द्वारा दो ग्रन्थ रचित हैं—

1. उपासकाध्ययन या श्रावकाचार : इसमें कुल 546 गाथाएँ हैं। इसमें श्रावक को व्रती, उपासक, देशव्रती और आगारी आदि नाम दिए हैं। जो सच्चे देव, शास्त्र और गुरु की उपासना करता है, वह उपासक कहलाता है। इस ग्रन्थ में श्रावक के सम्पूर्ण आचार वर्णित किए गये हैं। यह ग्रन्थ 'वसुनन्दि-श्रावकाचार' के नाम से भी प्रसिद्ध है।

2. प्रतिष्ठासारसंग्रह : इस ग्रन्थ में छ: अध्याय हैं। इस ग्रन्थ में पंचांग शुद्धि, लग्नशुद्धि, ग्रह-शुद्धि, भूमि-शुद्धि, भूमि-परीक्षा, दिग्देवता, वास्तु-पूजा, वास्तुपूजा के मंत्र आदि का वर्णन है। साथ ही जिनबिम्ब बनाने की विधि, मूर्तिनिर्माण की विधि, वेदिका निर्माण, मंडप निर्माण, वेदि शुद्धि आदि अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों का वर्णन है। सकलीकरण, ध्वजारोपण एवं कलश-स्थापना आदि की विधियाँ भी विस्तार से इस ग्रन्थ में हैं।

आचार्य वसुनन्दि सैद्धान्तिक

जीवन-परिचय : वसुनन्दि नाम के अनेक आचार्य हैं, परन्तु ये वसुनन्दि सैद्धान्तिक उनसे भिन्न आचार्य हैं।

आचार्य वसुनन्दि का समय 11वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध या 12वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाता है।

रचना-परिचय : आपकी तीन रचनाएँ मानी जाती हैं—

1. आप्तमीमांसा वृत्ति : आचार्य समन्तभद्र के देवागम स्तोत्र या आप्तमीमांसा की 114 कारिकाओं पर वसुनन्दि ने अपनी वृत्ति लिखी है। यह वृत्ति अत्यन्त संक्षिप्त है। इसमें श्लोकों का सामान्य अर्थ दिया है, विस्तार नहीं किया है।

2. जिनशतक टीका : आचार्य समन्तभद्र ने 116 पद्यों में चौबीसों तीर्थंकर की स्तुति करते हुए स्तवन ग्रन्थ लिखा है। इस ग्रन्थ का मूलनाम 'स्तुतिविद्या' है। इसी ग्रन्थ पर वसुनन्दि आचार्य ने टीका लिखी है।

3. आचारवृत्ति : 'मूलाचार' मुनियों के आचार विषय का वर्णन करनेवाला प्राचीन मौलिक ग्रन्थ है। आचार्य वसुनन्दि की यह आचारवृत्ति इसी ग्रन्थ पर लिखी टीका है,। इसका विषय मूलाचार ग्रन्थ के समान है।

आचार्य नरेन्द्रसेन

जीवन-परिचय : नरेन्द्रसेन वीरसेन के प्रशिष्य और गुणसेन के शिष्य हैं। उन्होंने ग्रन्थ के पुष्पिका-वाक्य में अपने को पंडिताचार्य विशेषण के साथ लिखा है।

नरेन्द्रसेन ने अपने गुरुओं के लिए लिखा है कि मेरी बुद्धि वीरसेन के प्रसाद से निर्मल हुई है और गुणसेनाचार्य के आशीर्वाद से मैं साधु के द्वारा पूजित देवसेन के पट्ट (पद) पर प्रतिष्ठित हुआ हूँ।

नरेन्द्रसेन का समय विक्रम संवत् 1120 ई. से 1160 तक का माना जाता है।

रचना-परिचय : नरेन्द्रसेन की दो कृतियाँ प्रसिद्ध हैं—

1. सिद्धान्तसारसंग्रह : इस ग्रन्थ में 12 अधिकार हैं, जिनमें कुल 1924 श्लोक हैं। इस ग्रन्थ में मुख्य रूप से गृद्धपिच्छाचार्य के तत्त्वार्थसूत्र का विषय वर्णन है, किन्तु गौण रूप से अन्य अनेक बातों का भी संकलन है।

2. प्रतिष्ठा दीपक : इनकी दूसरी कृति प्रतिष्ठा-दीपक है, जिसकी रचना उन्होंने पूर्वाचार्यों के अनुसार की है। यह रचना अभी अप्रकाशित है।

लघु अनन्तवीर्य

जीवन-परिचय : जैन न्याय-साहित्य के इतिहास में दो अनन्तवीर्य आचार्यों का उल्लेख मिलता है। इनमें से एक अनन्तवीर्य वे हैं जिन्होंने अकलंकदेव के सिद्धिविनिश्चय पर टीका लिखी है और दूसरे अनन्तवीर्य वे हैं जिनका वर्णन हम कर रहे हैं। इन्होंने प्रमेयरत्नमाला ग्रन्थ लिखा है। इन्हें लघु अनन्तवीर्य या द्वितीय अनन्तवीर्य भी कहा जाता है।

लघु अनन्तवीर्य का समय विक्रम की 12वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाता है।

रचना-परिचय : लघु अनन्तवीर्य की एकमात्र रचना 'प्रमेयरत्नमाला' है—

प्रमेयरत्नमाला : प्रमेयरत्नमाला को 'परीक्षामुखपंजिका' भी कहा है और कहीं-कहीं पर इसे 'परीक्षामुखलघुवृत्ति' भी कहा है, क्योंकि यह परीक्षामुखसूत्र की टीका है। यह रचना जैन न्याय के पढ़ने वालों के लिए विशेष उपयोगी है। आचार्य अनन्तवीर्य ने इस ग्रन्थ की रचना राजा हीरप के पुत्र शन्तिषेण को पढ़ाने के लिए की थी। प्रमेयरत्नमाला ग्रन्थ का विषय परीक्षामुख ग्रन्थ के समान ही प्रमाण और प्रमाणाभास पर आधारित है।

आचार्य जयसेन प्रथम

जीवन-परिचय : आचार्य जयसेन लाडवागड संघ के विद्वान थे। इन्होंने अपने ग्रन्थ धर्मरत्नाकर में अपनी गुरु परम्परा इस प्रकार दी है—धर्मसेन के शिष्य शान्तिषेण, शान्तिषेण के शिष्य गोपसेन, गोपसेन के शिष्य भावसेन और भावसेन के शिष्य जयसेन थे। इनका वंश योगीन्द्रवंश है। जयसेन तप के द्वारा पाप समूह का नाश करनेवाले और पारदर्शी विद्वान रहे हैं।

जयसेन ने अपने ग्रन्थ 'धर्मरत्नाकर' में रचनाकाल अंकित किया है। उसके अनुसार विक्रम संवत् 1055 में धर्मरत्नाकर ग्रन्थ की समाप्ति हुई है। इस आधार पर जयसेन का समय विक्रम की 10-11वीं शताब्दी माना जाता है।

रचना-परिचय : आचार्य जयसेन प्रथम की एक मात्र रचना प्राप्त है—

धर्मरत्नाकर : इस ग्रन्थ में आचार और तत्त्वज्ञान का विषय वर्णित है। ग्रन्थ के नाम के अनुसार ही इसमें रत्नत्रय, श्रावक के बारह व्रत, सात तत्त्व आदि का विस्तृत वर्णन है। ग्रन्थ में 20 अध्याय हैं और भाषा संस्कृत है।

आचार्य जयसेन द्वितीय

जीवन-परिचय : आचार्य जयसेन द्वितीय अमृतचन्द्रसूरि के समान कुन्दकुन्द के ग्रन्थों के टीकाकार हैं। वे मूलसंघ के विद्वान आचार्य वीरसेन के प्रशिष्य और सोमसेन के शिष्य थे। जयसेन मालूसाहू के पौत्र और महीपति साहू के पुत्र थे। उनका बाल्यकाल का नाम चारुभट था। चारुभट बचपन से ही जिन-चरणों के भक्त और आचार्यों के सेवक थे। चारुभट जब दिगम्बर मुनि हो गये तब उनके तपस्वी जीवन का नाम जयसेन हो गया।

आचार्य जयसेन द्वितीय का समय ई. सन् की 11वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध या 12वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाता है।

रचना-परिचय : आचार्य जयसेन द्वितीय की तीन रचनाएँ प्राप्त हैं और तीनों का नाम एक ही है—

1. तात्पर्यवृत्ति : जयसेनाचार्य ने कुन्दकुन्दाचार्य के समयसार, पंचास्तिकाय और प्रवचनसार तीनों ग्रन्थों पर संस्कृत भाषा में टीका बनाई, जिसका नाम तात्पर्यवृत्ति है। वृत्ति की भाषा अत्यन्त सरल है।

इनकी टीका की प्रमुख विशेषता यह है कि वे पहले प्रत्येक गाथा के पदों का शब्दार्थ स्पष्ट करते हैं, उसके बाद 'अयमत्राभिप्राय:' (यहाँ इसका अभिप्राय यह है)—ऐसा लिखकर उसका स्पष्टीकरण करते हैं।

आचार्य अमरकीर्ति

जीवन-परिचय : आचार्य अमरकीर्ति काष्ठासंघान्तर्गत उत्तर माथुर संघ के विद्वान मुनि चन्द्रकीर्ति के शिष्य एवं अनुज थे। अमरकीर्ति की माता का नाम 'चर्चिणी' और पिता का नाम 'गुणपाल' था। अमरकीर्ति आचार्य ने अपनी गुरु-परम्परा का उल्लेख इस प्रकार किया है—अमितगति द्वितीय के शिष्य शन्तिषेण, उनके शिष्य अमरसेन, उनके शिष्य श्रीषेण, उनके शिष्य श्रीचन्द्र और उनके शिष्य अमरकीर्ति आचार्य हैं।

आचार्य अमरकीर्ति का समय विक्रम की 12-13वीं शताब्दी है।

रचना-परिचय : आचार्य अमरकीर्ति के द्वारा रचित निम्न रचनाओं का उल्लेख मिलता है—

1. णेमिणाहचरिउ, 2. महावीरचरिउ, 3. जसहरचरिउ, 4. धर्मचरित टिप्पण, 5. सुभाषितरत्न निधि, 6. धर्मोपदेश, 7. झाणपईव (ध्यानप्रदीप), 8. षट्कर्मोपदेश, 9. पुरन्दरविधान कथा।

परन्तु इनमें से केवल तीन ही रचनाएँ उपलब्ध हैं—

1. णेमिणाहचरिउ : इस ग्रन्थ में 25 सन्धियाँ हैं, जिनकी कुल श्लोक-संख्या 6895 हैं। इसमें जैनियों के बाईसवें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ की जीवन-गाथा अंकित है। इस ग्रन्थ को कवि ने संवत् 1244 भाद्रपद शुक्ल चतुर्दशी को समाप्त किया था। यह प्रति सोनागिरि के भट्टारकीय शास्त्रभंडार में सुरक्षित है।

2. छक्कम्मोवएस : अमरकीर्ति ने इस ग्रन्थ में गृहस्थों के षट्कर्मों का उपदेश दिया है। षट्कर्म हैं—देवपूजा, गुरुसेवा, स्वाध्याय, संयम, तप और त्याग। इस ग्रन्थ में 14 सन्धियाँ और 215 श्लोक हैं। यह ग्रन्थ अभी अप्रकाशित है।

3. पुरन्दरविधान कथा : इस कथा में देवपूजा का विस्तृत वर्णन किया है। इसमें पुरन्दरव्रत का नियम भी बतलाया है। यह व्रत किसी भी महीने के शुक्ल पक्ष में किया जा सकता है। कवि ने इस ग्रन्थ को अम्बाप्रसाद के लिए बनाया है।

आचार्य माधवचन्द्र त्रैविद्य

जीवन-परिचय : आचार्य माधवचन्द्र त्रैविद्य चन्द्रसूरि के प्रशिष्य और सकलचन्द्र के शिष्य थे। तर्क, शब्द और सिद्धान्तादि तीन विषयों में निपुण होने के कारण वे त्रैविद्य कहलाते थे।

आचार्य माधवचन्द्र का समय लगभग 12वीं शताब्दी माना जाता है।

रचना परिचय : माधवचन्द्र त्रैविद्य द्वारा रचित एक ही ग्रन्थ उपलब्ध है—

1. क्षपणासार-गद्य : क्षपणासार-गद्य में कर्मों के क्षपण करने की प्रक्रिया का सुन्दर वर्णन किया है। माधवचन्द्र ने इस ग्रन्थ की रचना शिलाहार कुल के राजा वीर भोजदेव के प्रधानमन्त्री बाहुबली के लिए की थी। क्षपणासार गद्य का निर्माण शक संवत् 1125 (सन् 1203) विक्रम संवत् 1260 में किया गया था।

आचार्य भावसेन त्रैविद्य

जीवन-परिचय : आचार्य भावसेन त्रैविद्य मूलसंघ सेनगण के आचार्य थे। ये अपने समय के प्रभावशाली विद्वान रहे हैं। आचार्य भावसेन को त्रैविद्य चक्रवर्ती आदि विशेष उपाधियाँ दी गयी हैं। जैन आचार्यों में शब्दागम (व्याकरण) तर्कागम (दर्शन) तथा परमागम (सिद्धान्त) इन तीनों विद्याओं में निपुण व्यक्ति को 'त्रैविद्य' की उपाधि दी जाती थी। इससे स्पष्ट है कि भावसेन तर्क, व्याकरण और सिद्धान्त इन विषयों के मर्मज्ञ विद्वान थे। साथ ही वैद्यक, संगीत, काव्य और नाटक आदि विषयों के भी ज्ञाता माने जाते हैं।

भावसेन त्रैविद्य ने अपने व्यवहार के सम्बन्ध में 'विश्वतत्त्वप्रकाश' ग्रन्थ के अन्त में लिखा है कि—दुर्बलों के प्रति मेरा अनुग्रह रहता है, समान व्यक्तियों के प्रति सौजन्य और श्रेष्ठ एवं विद्वानों के प्रति सम्मान का व्यवहार किया जाता है, किन्तु जो अपनी श्रेष्ठ बुद्धि के कारण घमंड करते हैं, स्पर्धा करते हैं, उनके गर्वरूपी पर्वत के लिए मेरे वचन वज्र के समान होते हैं।

समय-निर्धारण : भावसेन त्रैविद्य का समय ईसा की 13वीं शताब्दी का अन्तिम भाग माना जाता है।

रचना-परिचय : डॉ. विद्याधर जोहरापुरकर ने 'विश्वतत्त्वप्रकाश' की प्रस्तावना में भावसेन त्रैविद्य की दश रचनाएँ बतलाई हैं—1. विश्वतत्त्वप्रकाश, 2. प्रमाप्रमेय, 3. कथाविचार, 4. शाकटायन व्याकरण टीका, 5. कातन्त्ररूपमाला, 6. न्याय सूर्यावली 7. भुक्तिमुक्तिविचार, 6. सिद्धान्तसार, 9. न्यायदीपिका, 10. सप्त पदार्थी टीका।

किन्तु इनमें से मात्र तीन रचनाएँ ही प्रकाशित और उपलब्ध हैं—

1. विश्वतत्त्वप्रकाश : इसमें आचार्य उमास्वामी द्वारा रचित तत्त्वार्थसूत्र के मंगलाचरण 'ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां' पर विशाल ग्रन्थ लिखने का प्रयास किया है। इसमें उन्होंने 'मोक्षशास्त्रे विश्वतत्त्वप्रकाशे' रूप में उल्लेख करते हुए ग्रन्थ का

प्रथम अध्याय लिखा है। साथ ही चार्वाक, सांख्य आदि दर्शनों के सिद्धान्तों का भी खंडन किया है।

2. प्रमा-प्रमेय : इस ग्रन्थ में भी दार्शनिक चर्चा की गयी है। इसके मंगल पद्य में 'प्रमाप्रमेयं प्रकटं प्रवक्ष्ये' अर्थात् 'प्रमाप्रमेय का कथन कहता हूँ।' इस वाक्य द्वारा प्रमाप्रमेय ग्रन्थ को बनाने की प्रतिज्ञा की गयी है।

ये दोनों ग्रन्थ 'जीवराज ग्रन्थमाला' शोलापुर से प्रकाशित हो चुके हैं।

3. कातन्त्ररूपमाला : कातन्त्ररूपमाला में व्याकरण के सूत्रों के अनुसार शब्द रूपों की सिद्धि का वर्णन आया है। ग्रन्थ दो भागों में विभक्त है। पूर्वार्द्ध भाग 574 सूत्रों द्वारा सन्धि, नाम, समास और तद्धित के रूपों की सिद्धि की गयी है। उत्तरार्द्ध (बाद के) भाग में 809 सूत्रों द्वारा तिङन्त कृदन्त के रूपों का वर्णन है। कातन्त्ररूपमाला यह नाम भावसेन का दिया हुआ है। यों इस ग्रन्थ का नाम 'कलाप और कौमार' भी है। संस्कृत-भाषा के आरम्भिक अभ्यासियों के लिए यह ग्रन्थ बहुत उपयोगी है।

आचार्य अभयचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती

जीवन-परिचय : मूलसंघ और कुन्दकुन्द की परम्परा में आचार्य माघनन्दि हुए हैं। उनके दो शिष्य थे—1. नेमिचन्द्र भट्टारक, 2. अभयचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती। अभयचन्द्र बालचन्द्र पंडितदेव के श्रुतगुरु थे। अभयचन्द्र सूरि छन्द, न्याय, निघण्टु, शब्द, समय, अलंकार और प्रमाणशास्त्र के प्रकांड विद्वान थे। श्रुतमुनि ने आचार्य अभयचन्द्र को—व्याकरण, दर्शन और सिद्धान्त शास्त्रों का ज्ञाता और सब वादियों (प्रमाण, तर्क) को जीतनेवाला बतलाया है। अभयचन्द्र और बालचन्द्र मुनि की प्रशंसा बेल्लूर के शिलालेखों में भी की गयी है।

अभयचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती का समय ईसा की 13वीं शताब्दी है। ये 89 वर्ष तक जीवित रहे।

रचना-परिचय : इन्होंने दो ग्रन्थों की रचना की है—

1. कर्मप्रकृति संस्कृत पद्य : इस ग्रन्थ में आचार्य ने कर्मसिद्धान्त का अर्थात् कर्म के भेद-प्रभेदों का वर्णन किया है। साथ में पाँच लब्धियों और चौदह गुणस्थानों का भी वर्णन किया है।

2. मन्दप्रबोधिका टीका : श्री जुगलकिशोर मुख्तार ने इनको 'गोम्मटसार जीवकांड' ग्रन्थ की 'मन्दप्रबोधिका' टीका का रचयिता भी माना है। इस ग्रन्थ में भी कर्मसिद्धान्त का विशद वर्णन किया गया है।

आचार्य अजितसेन

जीवन-परिचय : अजितसेन नाम के अनेक विद्वान हुए हैं। प्रस्तुत आचार्य अजितसेन सेनगण के विद्वान और तुलु देश के निवासी थे। इससे अधिक इनका परिचय प्राप्त नहीं है।

आचार्य अजितसेन का समय विक्रम की 13वीं शताब्दी माना जाता है—

रचना-परिचय : आचार्य अजितसेन की दो रचनाएँ उपलब्ध हैं।

1. शृंगारमंजरी : यह छोटा-सा अलंकार शास्त्र का ग्रन्थ है। इसमें तीन परिच्छेद (अध्याय) हैं, जिनमें संक्षेप में रस, रीति और अलंकारों का वर्णन है।

2. अलंकार चिन्तामणि : यह ग्रन्थ भी अलंकार का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में पाँच परिच्छेद हैं। कवि ने अलंकारों के उदाहरण में समन्तभद्र, जिनसेन और हरिचन्द्र आदि अनेक आचार्यों के ग्रन्थों के पद्यों को भी लिया है।

आचार्य अजितसेन के ये काव्य उनकी काव्य शास्त्र विषयक धारणा का रूप है। उन्होंने लिखा है कि काव्य शब्दालंकार तथा अर्थालंकार से, नवरसों से और व्यंग्यादि अनेक अर्थों से युक्त होना चाहिए।

आचार्य श्रुतमुनि

जीवन-परिचय : डॉ. ज्योतिप्रसाद जी ने 'जैन सन्देश' में प्रकाशित अपने एक लेख में 17 श्रुतमुनि हुए हैं—ऐसा बताया है। परन्तु हम यहाँ परमागमसार, आस्रवत्रिभंगी और भावत्रिभंगी जैसे ग्रन्थों के रचयिता आचार्य श्रुतमुनि का परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं। आचार्य श्रुतमुनि मूलसंघ देशीयगण पुस्तकगच्छ और कुन्दकुन्द आम्नाय के आचार्य हैं। इनके गुरु बालचन्द्र थे, जिनसे इन्होंने अणुव्रत ग्रहण किए थे। बाद में इन्होंने अभयचन्द्र सिद्धान्तदेव से महाव्रत एवं अभयसूरि और प्रभाचन्द्र आचार्य से शास्त्रों का ज्ञान ग्रहण किया था।

आचार्य श्रुतमुनि की रचनाओं के आधार पर इनका समय सन् 1341 (विक्रम संवत् 1398) माना जाता है, क्योंकि आपकी अन्तिम रचना परमागमसार में उसका रचनाकाल शक संवत् 1262 (विक्रम संवत् 1397) वृष संवत्सर मार्गशीर्ष सुदी सप्तमी गुरुवार दिया है।

रचना-परिचय : आचार्य श्रुतमुनि की तीन रचनाएँ प्राप्त होती हैं—

1. भावत्रिभंगी : इस ग्रन्थ का नाम भावसंग्रह भी है। इसमें 123 गाथाएँ हैं। इसमें औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक आदि भावों के तीन भंग (भेद) करके उनका वर्णन किया गया है। अत: इसका नाम 'भावत्रिभंगी' रखा गया है। इस ग्रन्थ में 14 गुणस्थानों और 14 मार्गणास्थानों का भी वर्णन किया है।

2. आस्रवत्रिभंगी : इस ग्रन्थ में 62 गाथाएँ हैं। इस ग्रन्थ में मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग इन मूल आस्रवों का वर्णन एवं इनके भेदों का वर्णन गुणस्थान और मार्गणास्थान के अनुसार किया है। इसमें गोम्मटसार ग्रन्थ की अनेक गाथाओं को महत्त्वपूर्ण मान कर लिया है।

3. परमागमसार : इस ग्रन्थ में 230 गाथाएँ हैं और आठ अधिकार हैं। पंचास्तिकाय, षट्द्रव्य, सप्ततत्त्व, नवपदार्थ, बन्ध और बन्ध के कारण, मोक्ष और मोक्ष के कारणों का क्रमश: वर्णन इस ग्रन्थ में है। ग्रन्थ के अन्त में ग्रन्थ-रचना-काल भी दिया है।

आचार्य भास्करनन्दि

जीवन-परिचय : 'तत्त्वार्थसूत्र' के टीकाकारों में भास्करनन्दि का अपना स्थान है। भास्करनन्दि के गुरु का नाम जिनचन्द्र और जिनचन्द्र के गुरु का नाम सर्वसाधु था। भास्करनन्दि आचार्य पूज्यपाद, आचार्य अकलंक और आचार्य विद्यानन्द के पश्चात् हुए हैं। ये सिद्धान्त ग्रन्थों के ठोस विद्वान हैं।

भास्करनन्दि का समय विक्रम संवत् 16वीं शती है।

रचना-परिचय : भास्करनन्दि की एक रचना उपलब्ध है—

1. तत्त्वार्थसूत्रवृत्ति-सुखबोधटीका : इस टीका ग्रन्थ का प्रकाशन मैसूर विश्वविद्यालय ने किया है। टीकाकार ने आचार्य पूज्यपाद, भट्ट अकलंकदेव और विद्यानन्द स्वामी की टीकाओं का भी आधार ग्रहण किया है। इस टीका की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

(1) विषय स्पष्टीकरण के साथ नवीन सिद्धान्तों की स्थापना।

(2) पूर्वाचार्यों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का अपने रूप में प्रस्तुतीकरण।

(3) ग्रन्थ के अन्दर के उदाहरणों का भी प्रस्तुतीकरण।

(4) मूल मान्यताओं का विस्तार।

(5) पूज्यपाद की शैली का अनुसरण करने पर भी मौलिकता का समावेश।

भट्टारक पद्मनन्दि

जीवन-परिचय : आचार्य पद्मनन्दि, भट्टारक और मुनि-दो विशेषणों द्वारा अभिहित हैं। मुनि पद्मनन्दि भट्टारक प्रभाचन्द्र के शिष्य थे।

अनेक पट्टावलियों और प्रशस्तियों के आधार पर आचार्य पद्मनन्दि का समय ई. सन् की 14वीं शती है।

रचना-परिचय : भट्टारक पद्मनन्दि की अनेक रचनाएँ हैं—

1. जीरापल्ली पार्श्वनाथ स्तवन : इस स्तोत्र में जीरापल्ली स्थित देवालय के मूलनायक भगवान पार्श्वनाथ की स्तुति की गयी है। इसमें 10 पद्य हैं।

2. भावनापद्धति : इस रचना का दूसरा नाम भावनाचतुस्त्रिंशतिका भी है। 34 पद्यों की यह भावपूर्ण स्तुति है।

3. श्रावकाचारसारोद्धार : इस ग्रन्थ में गृहस्थ विषयक आचार का वर्णन है। इसमें तीन परिच्छेद हैं।

4. अनन्तव्रतकथा : इस कथा में अनन्तचतुर्दशी के व्रत को सम्पन्न करने वाले फलाधिकारी व्यक्ति की कथा वर्णित है। इसमें 85 पद्य हैं।

5. वर्द्धमानचरित : इस संस्कृत-ग्रन्थ में तीर्थंकर वर्द्धमान का इतिवृत्त वर्णित है। इसमें अनुमानत: 300 पद्य हैं।

आचार्य पद्नन्दि की रचनाओं में भक्ति सम्बन्धी आदर्श उच्च कोटि का पाया जाता है। इन्होंने अनेक देशों, ग्रामों, नगरों आदि में विहार कर जनकल्याण का कार्य किया है, लोकोपयोगी साहित्य का निर्माण तथा उपदेशों द्वारा सन्मार्ग दिखलाया है। वर्षों तक साहित्य का निर्माण, शास्त्र-भंडारों का संकलन और प्रतिष्ठादि कार्यों द्वारा जैन संस्कृति को उन्नत करने का प्रयास किया है।

भट्टारक सकलकीर्ति

जीवन-परिचय : जैन भट्टारक परम्परा में 'भट्टारक सकलकीर्ति' का नाम विशेष उल्लेखनीय है। यह एक ऐसे सन्त हैं, जिनकी रचनाएँ राजस्थान के शास्त्र-भंडारों का गौरव बढ़ा रही है।

भट्टारक सकलकीर्ति का जन्म सवंत् 1443 (सन् 1386) में हुआ था। ये 'अणहिलपुर पट्टण' के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम कर्मसिंह हूमड़ एवं माता का नाम शोभा था। इनकी माता ने इनके गर्भधारण के समय एक सुन्दर स्वप्न देखा था और फल के अनुसार योग्य, कर्मठ और यशस्वी पुत्र की प्राप्ति होगी, ऐसा बतलाया गया था। इनका नाम 'पूनसिंह अथवा पूर्णसिंह' रखा गया।

कुशाग्र बुद्धि होने से पाँच वर्ष के होने पर ही इन्होंने सभी ग्रन्थों का अध्ययन कर लिया था। जीवन के प्रति विरक्ति देखकर माता-पिता ने 14 वर्ष की अवस्था में ही इनका विवाह कर दिया था, लेकिन इन्होंने गृहस्थ जीवन को त्याग कर मात्र 18 वर्ष की आयु में ही साधु जीवन अपना लिया। आठ वर्षों तक इन्होंने आचार्य पद्मनन्दि जी से प्राकृत, व्याकरण, काव्य, न्याय एवं संस्कृत ग्रन्थों का गम्भीर अध्ययन किया। बहुत समय तक ये भट्टारक रहे, 34 वर्ष में आचार्य की पदवी ग्रहण की, तब इनका नाम सकलकीर्ति रखा गया।

आचार्य सकलकीर्ति का स्थितिकाल विक्रम संवत् 1443-1499 तक है। एक पट्टावली के अनुसार भट्टारक सकलकीर्ति 56 वर्ष तक जीवित रहे हैं। संवत् 1499 में महसाना नगर में इनकी समाधि हुई।

सकलकीर्ति ने मुख्य रूप से राजस्थान एवं गुजरात प्रान्त के समीपस्थ प्रदेशों में विहार कर नवमन्दिर निर्माण, सिद्ध क्षेत्रों के लिए यात्रा संघों का नेतृत्व, प्रतिष्ठाएँ आदि करवायीं। संवत् 1490 से 1496 तक आपके द्वारा प्रतिष्ठापित मूर्तियाँ जैन मन्दिरों में मिलती हैं।

भट्टारक सकलकीर्ति असाधारण व्यक्तित्व के धनी थे। प्राकृत एवं संस्कृत

भाषाओं पर आपका पूर्ण अधिकार था।

रचना-परिचय : भट्टारक सकलकीर्ति ने साधु जीवन के प्रत्येक क्षण का उपयोग करते हुए लगभग 44 ग्रन्थों की रचना की है। इनके मुख से जो वाक्य निकलता था, वही काव्य रूप में परिवर्तित हो जाता था। आपके द्वारा लिखित रचनाएँ निम्नलिखित हैं—

संस्कृत भाषा में लिखित रचनाएँ हैं—

1. शान्तिनाथचरित
2. वर्द्धमानचरित
3. मल्लिनाथचरित
4. यशोधरचरित
5. धन्यकुमारचरित
6. सुकमालचरित
7. सुदर्शनचरित
8. जम्बूस्वामीचरित
9. श्रीपालचरित
10. मूलाचारप्रदीप
11. प्रश्नोत्तरोपासकाचार
12. आदिपुराण
13. उत्तरपुराण
14. सद्भाषितावली-सूक्तिमुक्तावली
15. पार्श्वनाथपुराण
16. सिद्धान्तसारदीपक
17. व्रतकथाकोश
18. पुराणसारसंग्रह
19. कर्मविपाक
20. तत्त्वार्थसारदीपक
21. परमात्मराजस्तोत्र
22. आगमसार
23. सारचतुर्विंशतिका
24. पञ्चपरमेष्ठीपूजा
25. अष्टाह्निकापूजा
26. सोलहकारणपूजा
27. द्वादशानुप्रेक्षा
28. गणधरवलयपूजा
29. समाधिमरणोत्साहदीपक

हिन्दी (राजस्थानी) भाषा में लिखित रचनाएँ—

1. आराधनाप्रतिबोधसार
2. नेमीश्वर-गीत
3. मुक्तावली-गीत
4. णमोकार-गीत
5. पार्श्वनाथाष्टक
6. सोलहकारणरासो
7. शिखामणिरास
8. रत्नत्रयरास

भट्टारक वर्द्धमान प्रथम

जीवन-परिचय : भट्टारक वर्द्धमान प्रथम आचार्य पद्मनन्दि की परम्परा में हुए हैं। इन्होंने अपने गुरु का नाम भी निर्देशित नहीं किया है। इनके बारे में अधिक परिचय ज्ञात नहीं होता है। इन्हें 'परवादिपंचानन' की उपाधि प्राप्त थी।

भट्टारक वर्द्धमान का समय ई. सन् की 14वीं शताब्दी है।

रचना-परिचय : इनके द्वारा रचित ग्रन्थ एक है—

1. वराङ्गचरित : भट्टारक वर्द्धमान प्रथम ने संस्कृत भाषा में 'वराङ्गचरित' नामक महाकाव्य लिखा है। इसमें 13 सर्ग हैं। वराङ्ग, 22वें तीर्थंकर नेमिनाथ और श्रीकृष्ण के समकालीन धीरोदात्त नायक हैं। प्रस्तुत काव्य में 1383 श्लोक हैं।

मुनि कल्याणकीर्ति

जीवन-परिचय : मुनि कल्याणकीर्ति भट्टारक ललितकीर्ति के दीक्षित शिष्य थे। कल्याणकीर्ति अपने समय के अच्छे विद्वान, कवि और लेखक थे।

मुनि कल्याणकीर्ति ईसा की 15वीं शताब्दी के विद्वान हैं। वे विक्रम संवत् 1488 से 1508 तक ग्रन्थों की रचना करते रहे।

रचना-परिचय : इनके द्वारा लिखित रचनाएँ निम्नलिखित हैं—

1. जिनयज्ञफलोदय
2. ज्ञानचन्द्राभ्युदय
3. कामतकथे
4. अनुप्रेक्षे
5. जिनस्तुति
6. फणिकुमार चरित
7. यशोधर चरित
8. तत्त्वभेदाष्टक
9. सिद्धराशि

भट्टारक विद्यानन्दि

जीवन-परिचय : आचार्य विद्यानन्दि बलात्कारगण की सूरत शाखा के भट्टारक थे। इस शाखा का आरम्भ भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति से हुआ है। ये भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति के शिष्य थे। विद्यानन्दि ने अनेक तीर्थक्षेत्रों की यात्रा की थी। इनके द्वारा अनेक मूर्तियाँ भी प्रतिष्ठित की गयी हैं। इन्हें राजाओं द्वारा भी सम्मान प्राप्त था।

अनेक प्रमाणों के आधार पर विद्यानन्दि का समय विक्रम संवत् 1499-1538 पाया जाता है।

रचना-परिचय : इनके द्वारा रचित ग्रन्थ एक है—

1. सुदर्शन चरित : भट्टारक विद्यानन्दि द्वारा सुदर्शनचरित नाम चरितकाव्य की रचना गन्धार नगर या गन्धारपुरी में की गयी है। सूरत नगर का ही नामान्तर गन्धार नगर है। इस कृति की रचना विक्रम संवत् 1355 के लगभग सम्पन्न हुई है। इस ग्रन्थ में पुण्यपुरुष सुदर्शन का आख्यान वर्णित है। कथावस्तु 12 अधिकारों एवं 1362 श्लोकों में विभक्त है।

शुभकीर्ति

जीवन-परिचय : शुभकीर्ति नाम के अनेक आचार्य हुए हैं—पहले शुभकीर्ति वादीन्द्र विशालकीर्ति के पट्टधर थे और इनका समय 13वीं शताब्दी है। दूसरे शुभकीर्ति का नाम चन्द्रगिरिपर्वत के अभिलेख में आया है, जो प्रमुख वाद विद्वान थे। तीसरे शुभकीर्ति रामचन्द्र के शिष्य थे। चतुर्थ शुभकीर्ति का परिचय लिख रहे हैं। ये अपभ्रंश शान्तिनाथ चरित के रचयिता हैं। ये संस्कृत एवं अपभ्रंश दोनों ही भाषाओं के निष्णात विद्वान थे।

इनका समय विक्रम संवत् की 15वीं शताब्दी है।

रचना-परिचय : शुभकीर्ति ने एक ही ग्रन्थ की रचना की है।

1. शान्तिनाथचरित : शुभकीर्ति द्वारा विरचित अपभ्रंश भाषा में शान्तिनाथ चरित उपलब्ध होता है, जिसकी पांडुलिपि नागौर के शास्त्रभंडार में सुरक्षित है। ग्रन्थ में 19 सन्धियाँ (अध्याय) हैं। भगवान शान्तिनाथ पंचम चक्रवर्ती थे। इन्होंने समस्त षट्खण्डों को जीतकर चक्रवर्ती पद प्राप्त किया था। पश्चात् दिगम्बर दीक्षा ले घोर तपस्या कर केवलज्ञान प्राप्त किया और अन्त में अघातिया कर्मों को नाशकर अचल अविनाशी सिद्धपद को प्राप्त किया। ग्रन्थ के अन्त में कवि ने एक संस्कृत पद्य में ग्रन्थ का रचनाकाल 1436 दिया है।

भट्टारक यश:कीर्ति

जीवन-परिचय : भट्टारक यश:कीर्ति भट्टारक गुणकीर्ति के लघुभ्राता और उनके पट्टधर थे। ये उस समय के सुयोग्य विद्वान और प्रतिष्ठाचार्य थे। संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषा के ज्ञाता, कवि और प्रभावशाली भट्टारक थे।

भट्टारक यश:कीर्ति का समय 15वीं शताब्दी सुनिश्चित है, क्योंकि इन्होंने हरिवंशपुराण की रचना संवत् 1500 में की है।

रचनाएँ : भट्टारक यश:कीर्ति की चार रचनाएँ उपलब्ध हैं—

1. पांडवपुराण : अपभ्रंश भाषा में लिखित इस ग्रन्थ में 34 सन्धियाँ हैं, जिनमें श्रीकृष्ण का चरित भी अंकित है। साथ ही नेमिनाथ, युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन की तपश्चर्या तथा निर्वाण-प्राप्ति, नकुल, सहदेव का सर्वार्थसिद्धि प्राप्त करना और बलदेव का स्वर्ग जाने का वर्णन है। कवि ने पांडवपुराण की रचना नवग्राम नामक नगर, जो दिल्ली के निकट था, वहाँ पर शाह हेमराज के अनुरोध से की थी।

2. हरिवंशपुराण : यह ग्रन्थ भी अपभ्रंश भाषा में लिखित है, इसमें 13 सन्धियाँ और 267 कडवक हैं। इस ग्रन्थ में हरिवंश की कथा वर्णित है।

3. जिनरात्रि कथा : इस लघुकाय काव्य में भगवान महावीर की निर्वाणप्राप्ति कार्तिक-कृष्णा चतुर्दशी की रात्रि का काव्यात्मक वर्णन है। भगवान महावीर के आचरण का पालन ही कवि की रचना का मुख्य उद्देश्य है।

4. रविव्रतकथा : इसमें रविव्रत की कथा अंकित है। छोटी-सी यह रचना भी बहुत महत्त्वपूर्ण है।

भट्टारक भुवनकीर्ति

जीवन-परिचय : भट्टारक भुवनकीर्ति की गणना भट्टारक सकलकीर्ति के प्रधान शिष्यों में की जाती है।

आचार्य भुवनकीर्ति विविध भाषाओं और शास्त्रों के ज्ञाता थे। इन्हें विभिन्न कलाओं का भी ज्ञान था। इनके उपदेश से कई मन्दिरों और मूर्तियों की स्थापना की गयी।

भट्टारक भुवनकीर्ति का समय विक्रम संवत् 1508-1527 माना है।

रचना-परिचय : आचार्य भुवनकीर्ति द्वारा रचित तीन ग्रन्थ उपलब्ध हैं—

1. जीवन्धर रास : इसमें जीवन्धरस्वामी के चरित का वर्णन है।

2. जम्बूस्वामी रास : इसमें जम्बूस्वामी के चरित का रास-शैली में अंकन है।

3. अञ्जनाचरित : इसमें अञ्जना के आख्यान को निबद्ध किया है।

भट्टारक सोमकीर्ति

जीवन-परिचय : पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रमुख साहित्यसेवियों में भट्टारक सोमकीर्ति का स्थान प्रमुख है। आप सदैव आत्मसाधना के साथ-साथ स्वाध्याय, साहित्यसृजन एवं शिष्यों के पठन-पाठन में प्रवृत्त रहते थे।

वे 10वीं शताब्दी के प्रसिद्ध भट्टारक रामसेन की परम्परा में होने वाले भट्टारक थे। इनके दादागुरु का नाम लक्ष्मीसेन और गुरु का नाम भीमसेन था।

1518 ई. में रचित एक ऐतिहासिक पट्टावली में इनको काष्ठसंघ का 87 वाँ भट्टारक बताया है। भट्टारक सोमकीर्ति का जन्म विक्रम संवत् 1500 के आस-पास होना चाहिए, क्योंकि ऐतिहासिक पट्टावली के अनुसार विक्रम संवत् 1518 में इन्हें भट्टारक पद प्राप्त हो चुका था।

रचना-परिचय : आचार्य सोमकीर्ति ने संस्कृत एवं हिन्दी दोनों ही भाषाओं में ग्रन्थ लिखे हैं। संस्कृत रचनाएँ निम्नलिखित हैं—

1. सप्तव्यसनकथा : इसमें सात कथाओं के माध्यम से सात व्यसनों का दुष्प्रभाव बताया गया है।

2. प्रद्युम्नचरित : इसमें श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न का जीवन चरित है।

3. यशोधरचरित : यशोधर के आख्यान को आठ सर्गों में विभक्त किया है।

4. गुर्वावलि : इसमें अपने संघ के पूर्वाचार्यों का संक्षिप्त परिचय दिया है। गुर्वावलि संस्कृत एवं हिन्दी दोनों भाषाओं में लिखी गयी है।

राजस्थानी रचनाएँ :

1. यशोधर रास : यह एक प्रबन्ध काव्य है। कवि ने इसमें प्रबन्ध काव्य के समस्त गुणों का समावेश किया है। समस्त काव्य 10 सर्गों में विभक्त है।

2. त्रेपन क्रियागीत : इस गीतिकाव्य में श्रावक के पालन करने योग्य त्रेपन क्रियाओं का वर्णन किया गया है।

3. ऋषभनाथ की धूलि : यह एक प्रबन्धकाव्य है और इसमें आदि तीर्थंकर ऋषभनाथ के जीवन-चरित का वर्णन चार सर्गों में किया गया है।

भट्टारक अभिनव धर्मभूषण

जीवन-परिचय : धर्मभूषण नाम के अनेक विद्वान हुए हैं। उनमें अभिनव धर्मभूषण भिन्न हैं। इन्होंने अपने को 'अभिनव', 'यति' और 'आचार्य' विशेषणों के साथ उल्लेखित किया है। ये भट्टारक वर्द्धमान के शिष्य थे। विजयनगर के द्वितीय शिलालेख में इनकी गुरुपरम्परा इस प्रकार दी गई है—

भट्टारक पद्मनन्दी, धर्मभूषण, अमरकीर्ति, धर्मभूषण द्वितीय, वर्द्धमान और अभिनव धर्मभूषण। ये अपने समय के अच्छे व्याख्याता, प्रतिभाशाली एवं प्रसिद्ध विद्वान थे। इनका व्यक्तित्व महान था। विजयनगर के राजा देवराय प्रथम, जो राजाधिराज परमेश्वर की उपाधि से विभूषित थे, इनके चरणों की पूजा किया करते थे। ये मुनियों और राजाओं द्वारा पूजित थे।

भट्टारक अभिनव धर्मभूषण का समय ईसा की 14वीं शताब्दी का उत्तरार्ध और 15वीं शताब्दी का पूर्वार्ध सुनिश्चित है।

रचना-परिचय : आचार्य ने जैन न्याय पर बहुत महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा है—

1. न्यायदीपिका : 'न्यायदीपिका' आपकी एकमात्र कृति है, जो अत्यन्त विशद और महत्त्वपूर्ण कृति है। यह जैन न्याय के प्राथमिक अभ्यासियों के लिए बहुत उपयोगी है। इसकी भाषा सुगम और सरल है। जिससे यह जल्दी ही विद्यार्थियों के लिए रुचिकर बन जाती है। इसमें तीन प्रकाश या अध्याय हैं—

प्रथमप्रकाश में प्रमाण का सामान्य लक्षण, उसकी प्रमाणता, बौद्ध, भट्ट, प्रभाकर और नैयायिकों द्वारा मान्य प्रमाण लक्षणों की समीक्षा की गयी है। जैनमत के सम्यग्ज्ञानत्व को प्रमाण का निर्दोष लक्षण स्थिर किया है। दूसरे प्रकाश में प्रत्यक्ष का स्वरूप, लक्षण, भेद-प्रभेदादि का वर्णन करते हुए अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष का समर्थन कर सर्वज्ञसिद्धि आदि का कथन किया गया है। तीसरे प्रकाश में परोक्ष का लक्षण, उसके भेद-प्रभेद, साध्य-साधनादि का लक्षण, हेतु, अनुमान, हेत्वाभासों का वर्णन तथा अन्त में आगम और नय का कथन करते हुए अनेकान्त तथा सप्तभंगी का संक्षेप में प्रतिपादन किया है।

भट्टारक ज्ञानभूषण

जीवन-परिचय : ज्ञानभूषण नाम से 4 आचार्यों का परिचय जैन साहित्य में मिलता है। हम यहाँ चर्चा कर रहे हैं—भट्टारक भुवनकीर्ति के शिष्य भट्टारक ज्ञानभूषण की।

भट्टारक ज्ञानभूषण गुजरात के रहने वाले थे। इनके व्यक्तित्व के बारे में शुभचन्द्र-पट्टावली में विशेष वर्णन मिलता है। भट्टारक भुवनकीर्ति के पश्चात् ज्ञानभूषण सागवाड़ा के पट्ट पर आसीन हुए थे और विक्रम संवत् 1557 तक इस पद पर रहे। भट्टारक ज्ञानभूषण का समय विक्रम संवत् 1500 से 1562 है।

रचना-परिचय : भट्टारक ज्ञानभूषण ने संस्कृत और हिन्दी दोनों ही भाषाओं में रचनाएँ लिखी हैं। संस्कृत रचनाएँ—

1. आत्मसम्बोधन काव्य : आत्मसम्बोधन आध्यात्मिक कृति है। इसकी प्रति जयपुर के शास्त्रभंडार में संग्रहीत है।

2. तत्त्वज्ञानतरंगिणी : इस ग्रन्थ में 18 अध्याय हैं और 536 पद्य हैं। ग्रन्थ में शुद्ध चैतन्यस्वरूप का वर्णन करते हुए ध्यान, भेद-विज्ञान, अहंकार-ममकार का त्याग, रत्नत्रयस्वरूप, शुद्ध चैतन्य का विस्तार से विवेचन किया है।

3. पूजाष्टक : इसमें भक्तामर पूजा, श्रुतपूजा, सरस्वतीपूजा, शास्त्रमंडल पूजा, ऋषिमंडल पूजा, पञ्चकल्याणकोद्यापन पूजा आदि की टीका है। समस्त कृति दस अधिकारों में विभक्त है। यह विक्रम संवत् 1528 में लिखी गयी है।

हिन्दी रचनाएँ :

1. आदीश्वर फाग : इस कृति में आदितीर्थंकर का जीवनचरित वर्णित है। इस कृति में 239 पद्य संस्कृत में और शेष 262 पद्य हिन्दी में लिखे गये हैं।

2. पोसह रास : यह रास कर्म सिद्धान्त पर आधारित है। इसमें 53 छन्द हैं, और षट्कर्मों के पालन करने का सुन्दर उपदेश है।

3. जलगालन रास : इसमें जल छानने की विधि का वर्णन है।

भट्टारक जिनचन्द्र

जीवन-परिचय : दिल्ली के भट्टारकों में भट्टारक जिनचन्द्र का स्थान महत्त्वपूर्ण है। जिनचन्द्र नाम के तीन आचार्य हुए हैं—1. गुणचन्द्र के शिष्य जिनचन्द्र, 2. मेरुचन्द्र के शिष्य जिनचन्द्र, 3. शुभचन्द्र के शिष्य जिनचन्द्र।

हम यहाँ शुभचन्द्र के शिष्य भट्टारक जिनचन्द्र की चर्चा कर रहे हैं।

भट्टारक जिनचन्द्र का समय 14-15वीं शताब्दी सिद्ध होता है। इनकी आयु 91 वर्ष, 8 माह, 27 दिन थी।

रचना-परिचय : आचार्य जिनचन्द्र की निम्न रचनाएँ हैं—

1. सिद्धान्तसार : सिद्धान्तसार में 79 गाथाएँ हैं। इस ग्रन्थ पर आचार्य--ज्ञान-भूषण की संस्कृत-टीका भी है।

2. जिनचतुर्विंशति स्तोत्र : इसमें संस्कृत भाषा में 24 तीर्थंकरों की स्तुतियाँ निबद्ध की गयी हैं। यह स्तोत्र जयपुर के विजयराम पांड्या के शास्त्रभंडार के एक गुटके में संग्रहीत है।

जिनचन्द्र ने प्राचीन ग्रन्थों की नयी-नयी प्रतियाँ लिखकर मन्दिरों में प्रेषित कीं, पुरातनमन्दिरों का जीर्णोद्धार एवं नये मन्दिरों की प्रतिष्ठाएँ कराकर जैन संस्कृति और धर्म का पर्याप्त प्रचार किया। ये बघेरवाला जाति के थे।

ब्रह्म जिनदास

जीवन-परिचय : ब्रह्म जिनदास संस्कृत के महान विद्वान और कवि थे। ये भट्टारक सकलकीर्ति के कनिष्क भ्राता और शिष्य थे। भट्टारक सकलकीर्ति के अनुज होने के कारण इनकी प्रतिष्ठा अत्यधिक थी। इनकी माता का नाम शोभा और पिता का नाम कर्णसिंह था। ये पाटन के रहने वाले तथा हूवड जाति के थे।

ब्रह्म जिनदास के सम्बन्ध में डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल ने एक स्वतन्त्र शोधपूर्ण ग्रन्थ भी लिखा है जो राजस्थान जैन साहित्य अकादमी जयपुर से प्रकाशित हुआ है।

रचना-परिचय : ब्रह्म जिनदास ग्रन्थ रचयिता होने के साथ कुशल उपाध्याय भी थे। यही कारण है कि इनके सान्निध्य में अनेक शिष्यों ने ज्ञानार्जन किया था।

ब्रह्म जिनदास का समय विक्रम संवत् 1450-1525 के बीच का है।

ब्रह्म जिनदास ने जीवन में बहुत अधिक लेखन कार्य किया है। पुराण, कथा, पूजा, रास, स्तवन और जयमाला आदि सभी विषयों पर संस्कृत एवं हिन्दी दोनों ही भाषाओं पर इन्होंने अपनी लेखनी चलाई है।

संस्कृत रचनाएँ : 1. जम्बूस्वामीचरित, 2. रामचरित, 3. हरिवंशपुराण, 4. पुष्पाञ्जलिव्रतकथा 5. जम्बूद्वीपपूजा, 6. सार्द्धद्वयद्वीपपूजा, 7. सप्तऋषिपूजा, 8. ज्येष्ठजिनवरपूजा, 9. सोलहकारणपूजा, 10. गुरु पूजा, 11. अनन्तव्रतपूजा, 12. जल यात्रा विधि।

राजस्थानी रचनाएँ : 1. आदिनाथपुराण, 2. हरिवंशपुराण, 3. राम-सीतारास, 4. यशोधररास, 5. हनुमतरास, 6. नागकुमाररास, 7. परमहंसरास, 8. अजितनाथरास, 9. होलीरास, 10. धर्मपरीक्षारास, 11. ज्येष्ठिजिनवररास, 12. श्रेणिकरास, 13. समकितमिथ्यात्वरास, 14. सुदर्शनरास, 15. अम्बिकारास, 16. नागश्रीरास, 17. श्रीपालरास, 18. जम्बूस्वामीरास, 19. भद्रबाहुरास, 20. कर्मविपाकरास, 21. सुकौशलस्वामीरास, 22. रोहिणीरास, 23. सोलहकारणरास, 24. दशलक्षणरास, 25. अनन्तव्रतरास, 26. धन्नकुमाररास, 27. चारुदत्तप्रबन्धरास, 28. पुष्पाञ्जलिरास, 29. धनपालरास, 30. भविष्यदत्तरास, 31. जीवन्धररास, 32. नेमीश्वररास, 33.

करकण्डुरास, 34. सुभौमचक्रवर्तीरास, 35. अट्ठाबीस-मूलगुणरास, 36. मिथ्यादुक्डमविनती, 37. बारहव्रतगीत, 38. जीवड़ागीत, 39. जिणन्दगीत, 40. आदिनाथस्तवन, 41. आलोचनाजयमाल, 42. गुरुजयमाल, 43. शास्त्रपूजा, 44. सरस्वतीपूजा, 45. गुरुपूजा, 45. जम्बूद्वीपपूजा, 47. निर्दोषसप्तमीव्रतपूजा, 48. रविव्रतकथा, 49. चौरासीजातिजयमाल, 50. भट्टारकविद्याधरकथा, 51. व्रतकथा, 52. अष्टांगसम्यक्त्वकथा, 53. पञ्चपरमेष्ठीगुण वर्णन।

भट्टारक शुभचन्द्र

जीवन-परिचय : भट्टरक शुभचन्द्र विजयकीर्ति के शिष्य थे। इन्होंने भट्टारक ज्ञानभूषण और विजयकीर्ति इन दोनों से ज्ञानार्जन किया है। संस्कृत, प्राकृत एवं देशी भाषा के साथ-साथ व्याकरण, छन्द, काव्य और न्याय आदि विषयों का पाण्डित्य सहज में ही प्राप्त था। इन्हें त्रिविध विद्याधर और षट् भाषा कवि चक्रवर्ती उपाधियाँ प्राप्त थीं।

इन्होंने अनेक देशों में विहार करते हुए धर्मापदेश दिया। अन्य भट्टारकों के समान इन्होंने भी अनेक मूर्तियाँ प्रतिष्ठित कराई।

भट्टारक शुभचन्द्र की शिष्य परम्परा में सकलभूषण, वर्णी क्षेमचन्द्र, सुमतिकीर्ति और श्रीभूषण आदि के उल्लेख मिलते हैं।

आचार्य शुभचन्द्र का जीवनकाल संवत् 1535-1620 तक आता है।

रचना-परिचय : आचार्य शुभचन्द्र की संस्कृत एवं हिन्दी दोनों ही भाषाओं में लगभग तीस रचनाएँ उपलब्ध हैं—

संस्कृत रचनाएँ :

1. चन्द्रप्रभचरित, 2. करकंडुचरित 3. कार्तिकेयानुप्रेक्षाटीका 4.चन्दनाचरित, 5. जीवन्धरचरित, 6.पांडवपुराण, 7. श्रेणिकचरित, 8. सज्जनचित्तबल्लभ, 9. पार्श्वनाथकाव्यपञ्जिका, 10 प्राकृतलक्षण, 11. अध्यात्मतरंगिणी, 12. अम्बिकाकल्प, 13. अष्टाह्निका कथा 14. कर्मदहनपूजा, 15.चन्दनषष्टीव्रतकथा, 16. गणधरवलयपूजा 17. चारित्रशुद्धिविधान 18. तीसचौबीसीपूजा 19. पञ्चकल्याणकपूजा 20. पल्लवीव्रतोद्यापन 21. तेरहद्वीपपूजा 22. पुष्पाञ्जलिव्रतपूजा 23 सार्द्धद्वयद्वीपपूजा 24.सिद्धचक्रपूजा।

हिन्दी रचनाएँ : 1. महावीरछन्द, 2. विजयकीर्तिछन्द, 3. गुरुछन्द, 4. नेमिनाथछन्द, 5. तत्त्वसारदूहा, 6. क्षेत्रपालगीत, 7. अष्टाह्निकागीत।

ब्रह्म जीवन्धर

जीवन-परिचय : ब्रह्म जीवन्धर भट्टारक सोमकीर्ति के प्रशिष्य एवं यश:कीर्ति के शिष्य थे। भट्टारक सेामकीर्ति काष्ठ संघ की नन्दितट-शाखा के गुरु थे तथा ये 10वीं शताब्दी के भट्टारक रामसेन की परम्परा में हुए हैं। ब्रह्म जीवन्धर इन्हीं यश:कीर्ति के शिष्य हैं।

इनका समय विक्रम संवत् की 16वीं शताब्दी है।

रचना-परिचय : ब्रह्म जीवन्धर द्वारा रचित निम्नलिखित रचनाएँ प्राप्त हैं—

1. गुणस्थानवेलि, 2. खटोलारास, 3. झुबुंकगीत, 4. श्रुतजयमाला, 5. नेमिचरित 6. सतीगीत, 7. तीनचौबीसीस्तुति, 8. दर्शनस्तोत्र, 9. ज्ञानविरागविनती, 10. आलोचना, 11. बीसतीर्थंकर जयमाला, 12. चौबीस तीर्थंकर जयमाला

भट्टारक श्रुतसागरसूरि

जीवन-परिचय : श्रुतसागरसूरि अपने संघ के अच्छे प्रतिभाशाली विद्वान और ग्रन्थकार थे। इनका व्यक्तित्व एक ज्ञानाराधक का व्यक्तित्व है, जिनका एक-एक क्षण श्रुतदेव की उपासना में व्यतीत हुआ है।

इनके गुरु का नाम विद्यानन्दि और गुरुभाई का नाम मल्लिभूषण था। मल्लिभूषण के अनुरोध पर ही इन्होंने कई ग्रन्थों की रचना की है।

श्रुतसागरसूरि ने अपने को देशव्रती, ब्रह्मचारी या वर्णी लिखा है तथा अनेक विशेषणों से स्वयं को अलंकृत किया है।

भट्टारक श्रुतसागरसूरि का समय विक्रम की 16वीं शताब्दी है।

रचना-परिचय : श्रुतसागरसूरि की अब तक 38 रचनाएँ प्राप्त हैं। इनमें आठ टीका ग्रन्थ हैं और चौबीस कथा ग्रन्थ हैं, शेष छह व्याकरण और काव्य ग्रन्थ हैं।

1. यशस्तिलकचन्द्रिका, 2. तत्त्वार्थवृत्ति, 3. तत्त्वत्रयप्रकाशिका, 4. जिनसहस्रनामटीका, 5. महाभिषेकटीका, 6. षट्पाहुडटीका, 7. सिद्धभक्तिटीका, 8. सिद्धचक्राष्टकटीका, 9. ज्येष्ठजिनवरकथा, 10. रविव्रतकथा, 11. सप्तपरमस्थानकथा, 12. मुकुटसप्तमी कथा, 13. अक्षयनिधिकथा, 14. षोडसकारणकथा, 15. मेघमालाव्रतकथा, 16. चन्दनषष्ठीकथा, 17. लब्धिविधानकथा, 18. पुरन्दरविधानकथा, 19. दशलाक्षणीव्रतकथा, 20. पुष्पाञ्जलिव्रतकथा, 21. आकाशपंचमीव्रतकथा, 22. मुक्तावलीव्रतकथा, 23. निर्दुःखसप्तमीव्रतकथा, 24. सुगन्धदशमी कथा, 25. श्रावणद्वादशीकथा, 26. रत्नत्रयव्रतकथा, 27. अशोकरोहिणीकथा, 28. तपोलक्षणपंक्तिकथा, 29. सिद्धभक्तिटीका, 30. मेरुपंक्तिकथा, 31. विमानपंक्तिकथा, 32. पल्लिविधानकथा 33. श्रीपालचरित 34. यशोधरचरित, 35. औदार्यचिन्तामणी, 36. श्रुतस्कन्धपूजा, 37. पार्श्वनाथस्तवन, 38. शान्तिनाथस्तवन।

ब्रह्म नेमिदत्त

जीवन-परिचय : ब्रह्म नेमिदत्त भट्टारक मल्लिभूषण के शिष्य थे। आप संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी और गुजराती भाषा के विद्वान थे। इन्होंने संस्कृत में चरित, पुराण और कथा आदि ग्रन्थों की रचना की है। इन्होंने मालारोहिणी नामक एक प्रसिद्ध रचना लिखी है। इनका व्यक्तित्व बहुमुखी था।

ये मालवा देश के अशोकनगर के निवासी थे। इनका गोत्र गोयल था और ये अग्रवाल जाति के थे।

ब्रह्म नेमिदत्त का समय विक्रम की 16वीं शताब्दी है।

रचना-परिचय : ब्रह्म नेमिदत्त पुराणकाव्य और आचारशास्त्र के रचयिता हैं। इनकी निम्नलिखित रचनाएँ प्राप्त हैं-

1. आराधनाकथाकोश, 2. नेमिनाथपुराण, 3. श्रीपालचरित, 4. सुदर्शनचरित, 5. रात्रि-भोजन त्याग कथा, 6. प्रीतङ्करमहामुनि चरित, 7. धन्यकुमारचरित, 8. नेमिनिर्वाणकाव्य, 9. नागकुमारकथा, 10. धर्मोपदेशपीयूषपर्व श्रावकाचार, 11. मालारोहिणी, 12. आदित्यवारव्रत रास।

टीकाकार नेमिचन्द्र

जीवन-परिचय : जैन साहित्य में नेमिचन्द्र नाम के अनेक आचार्यों का परिचय प्राप्त होता है। हम यहाँ जीवतत्त्वप्रदीपिका टीका के रचयिता नेमिचन्द्र का परिचय लिख रहे हैं।

भट्टारक नेमिचन्द्र नन्दि आम्नाय के हैं और ज्ञानभूषण भट्टारक के शिष्य हैं। प्रभाचन्द्र भट्टारक ने इन्हें आचार्य पद प्रदान किया था। कर्नाटक के जैन राजा मल्लिभूषण के कहने पर मुनिचन्द्र ने इन्हें सिद्धान्तशास्त्र का अध्ययन कराया था।

टीकाकार नेमिचन्द्र का समय ईस्वी सन् की 16वीं शती का मध्यभाग है।

रचना-परिचय : आपकी एक रचना प्राप्त है-

1.जीवतत्त्वप्रदीपिका : इन्होंने खण्डेलवाल वंश के शाह सांगा और शाह सहेस की प्रार्थना पर गोम्मटसार की कर्नाटकवृत्ति के आधार पर संस्कृत में जीवतत्त्वप्रदीपिकावृत्ति लिखी है। इसकी रचना में कीर्तिसूरि ने सहायता की और उसे प्रथम बार हर्षपूर्वक पढ़ा। आचार्य अभयचन्द्र ने उसका संशोधन करके उसकी प्रथम प्रति तैयार की थी।

यह टीका गोम्मटसार की बहुत ही महत्त्वपूर्ण संस्कृत टीका है। इसमें गम्भीर एवं कठिन विषय को अत्यन्त सरलतापूर्वक स्पष्ट किया गया है। जीवविषयक और कर्मविषयक प्रत्येक चर्चित विषय का सैद्धान्तिक रूप में सुन्दर विवेचन किया है।

मुनि महनन्दि

जीवन-परिचय : मुनि महनन्दि भट्टारक वीरचन्द्र के शिष्य थे। ये अपने युग के अत्यन्त प्रतिष्ठित साहित्यकार थे। महनन्दि ने अपना कोई परिचय नहीं दिया है। बस, इन्होंने भट्टारक वीरचन्द्र को अपना गुरु माना है। ये मुनि कहलाते थे।

महनन्दि का समय 16वीं शताब्दी है।

रचना-परिचय : महनन्दि की एक ही रचना प्राप्त है—

1. पाहुडदोहा : यह रचना बारहखड़ी के क्रम से लिखी गयी है। इसमें 333 दोहे हैं। यह रचना उपदेशात्मक, आध्यात्मिक और नीति सम्बन्धी है। कवि ने छोटे-छोटे दोहों में सुन्दर भावों का गुम्फन किया है। स्थापत्य की दृष्टि से भी इस रचना का बहुत महत्त्व है।

भट्टारक गुणचन्द्र

जीवन-परिचय : भट्टारक गुणचन्द्र भट्टारक रत्नकीर्ति के प्रशिष्य और भट्टारक यश:कीर्ति के शिष्य थे। गुणचन्द्र का पट्टाभिषेक साँवला गाँव में हुआ था।

भट्टारक गुणचन्द्र संस्कृत और हिन्दी भाषा के विद्वान कवि थे।

इनका समय विक्रम संवत् 1630 से 1653 बताया गया है। इनका स्वर्गवास सागवाड़ा में विक्रम संवत् 1653 में हुआ है।

रचना-परिचय : भट्टारक गुणचन्द्र की संस्कृत और हिन्दी दोनों ही भाषाओं में रचनाएँ पायी जाती हैं।

(क) संस्कृत रचना :

1. अनन्तनाथ पूजा, 2. मौनव्रतकथा,

(ख) हिन्दी रचना :

1. दयारसरास, 2. राजमतिरास, 3. आदित्यव्रतकथा, 4. बारहमासा, 5. बारहव्रत, 6. विनती, 7. स्तुति नेमिचन्द, 8. ज्ञानचेतनानुप्रेक्षा, 9. फुटकर पद।

भट्टारक श्रुतकीर्ति

जीवन-परिचय : भट्टारक श्रुतकीर्ति भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति के प्रशिष्य और त्रिभुवनकीर्ति के शिष्य थे। श्रुतकीर्ति सुलेखक, चिन्तक, बहुश्रुतज्ञ और प्रभावक विद्वान थे।

श्रुतकीर्ति का समय उनकी रचनाओं के आधार पर विक्रम संवत् की 16वीं शती सिद्ध होता है।

रचना-परिचय : भट्टारक श्रुतकीर्ति द्वारा लिखित निम्न कृतियाँ उपलब्ध हैं—

1. हरिवंशपुराण : हरिवंशपुराण वृहद्काय रचना है। इसमें 47 सन्धियाँ हैं और 22वें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ का जीवन चरित अंकित है। इसकी रचना जेरहट नगर के नेमिनाथ चैत्यालय में विक्रम संवत् 1552 माघ कृष्ण पञ्चमी सोमवार के दिन की है।

2. धर्मपरीक्षा : इस ग्रन्थ में 149 कड़वक हैं। इसमें पौराणिक मान्यताओं की व्यंग्यशैली में समीक्षा की गयी है। इस ग्रन्थ की रचना विक्रम संवत् 1552 में हुई है।

3. परमेष्ठीप्रकाशसार : इस ग्रन्थ की रचना विक्रम संवत् 1553 को श्रावक मास पंचमी के दिन हुई है। इसमें 3000 पद्य हैं और ग्रन्थ सात परिच्छेदों में विभक्त है। इस ग्रन्थ की पांडुलिपि आमेर-भंडार में सुरक्षित है।

4. योगसार : यह ग्रन्थ दो परिच्छेदों में विभक्त है। इसमें गृहस्थोपयोगी सैद्धान्तिक बातों पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही मुनिचर्या का भी वर्णन है।

भट्टारक रत्नकीर्ति

जैन साहित्य में रत्नकीर्ति नाम के आठ आचार्यों का परिचय मिलता है—

1. रत्नकीर्ति : अभयनन्दि के शिष्य—17वीं शताब्दी अभयचन्द्र के प्रशिष्य।
2. रत्नकीर्ति : जिनचन्द्र के शिष्य।
3. रत्नकीर्ति : भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति के शिष्य—विक्रम संवत् 1953
4. रत्नकीर्ति : धर्मचन्द्र के शिष्य—विक्रम संवत् 1296-1310
5. रत्नकीर्ति : सुरेन्द्रकीर्ति के शिष्य—विक्रम संवत् 1745
6. रत्नकीर्ति : ज्ञानकीर्ति के शिष्य—विक्रम संवत् 1535
7. रत्नकीति : ललितकीर्ति के शिष्य—विक्रम संवत् 1645-1683

भद्रबाहु चरित के रचयिता रत्नकीर्ति पूर्वोक्त सभी रत्नकीर्ति आचार्यों से भिन्न हैं। इनके गुरु ललितकीर्ति और दादागुरु अनन्तकीर्ति थे।

इनका समय विक्रम की 16वीं शती का उत्तरार्द्ध है।

रचना-परिचय : इनके द्वारा रचित एक ही रचना है—

1. भद्रबाहुचरित : इस ग्रन्थ में चार सर्ग हैं और उनमें भद्रबाहु का जीवनवृत्त वर्णित है। यह ग्रन्थ पुराणशैली में लिखा गया है, जिससे पाठकों का मन सहज रूप से लग जाता है।

भट्टारक धर्मकीर्ति

जीवन-परिचय : भट्टारक परम्परा में धर्मकीर्ति नाम के चार भट्टारकों का निर्देश प्राप्त होता है।

1. धर्मकीर्ति : त्रिभुवनकीर्ति के शिष्य
2. धर्मकीर्ति : भुवनकीर्ति के शिष्य
3. धर्मकीर्ति : सिंहकीर्ति के शिष्य
4. धर्मकीति : ललितकीर्ति के शिष्य

ललितकीर्ति के शिष्य धर्मकीर्ति का जैन संस्कृति के प्रचार एवं प्रसार में महत्त्वपूर्ण योगदान है। इन्होंने कई मूर्तियों एवं यंत्रों की स्थापना कराई है।

इनका समय विक्रम की 16-17वीं शताब्दी है।

रचना-परिचय : इनके द्वारा रचित दो रचनाएँ प्राप्त होती हैं—

1. पद्मपुराण : प्रथम रचना पद्मपुराण विक्रम संवत् 1668 में सावन महीने की तृतीया शनिवार के दिन मालवा देश में पूर्ण की गयी है। पद्मपुराण की रचना रविषेण के पद्मचरित के आधार पर की गयी है।

2. रचनापुराण : हरिवंशपुराण विक्रम संवत् 1671 अश्विन कृष्ण पञ्चमी रविवार के दिन पूर्ण हुआ है। इसमें 22वें तीर्थंकर नेमिनाथ का चरित अंकित है।

भट्टारक श्रीभूषण

जीवन-परिचय : श्रीभूषण नाम के दो भट्टारकों का परिचय प्राप्त होता है। पहले श्रीभूषण भानुकीर्ति के शिष्य हैं। श्रीभूषण विक्रम संवत् 1705 आश्विन शुक्ल तृतीया को पट्टाधीश हुए और 19 वर्ष तक पट्ट पर प्रतिष्ठित रहे। दूसरे श्रीभूषण विद्याभूषण के शिष्य हैं। इनके पिता का नाम कृष्णशाह और माता का नाम माकुही था। इन्हें 'षट्भाषा-कवि-चक्रवर्ती' की उपाधि मिली थी। भट्टारक श्रीभूषण ने साहित्य और संस्कृति के प्रचार में अपूर्व योगदान दिया है।

भट्टारक श्रीभूषण का समय विक्रम की 17वीं शताब्दी है।

रचना-परिचय : श्रीभूषण की कई रचनाएँ होनी चाहिए, क्योंकि ये अपने युग के बहुत बड़े विद्वान थे। परन्तु अभी तक इनकी तीन रचनाएँ उपलब्ध हैं—

1. शान्तिनाथ पुराण : शान्तिनाथ पुराण में 16वें तीर्थंकर शान्तिनाथ का जीवनचरित्र वर्णित है। कथावस्तु 16 सर्गों में विभक्त है।

2. द्वादशांगपूजा : इसमें श्रुतज्ञान की पूजा की गयी है।

3. प्रतिबोधचिन्तामणि : इस ग्रन्थ में मूलसंघ की उत्पत्ति की कथा दी गयी है।

भट्टारक नरेन्द्रसेन

जीवन-परिचय : जैन इतिहास में नरेन्द्रसेन नाम के अनेक आचार्य हुए हैं, जिनमें सात नरेन्द्रसेन मुख्य हैं। उनमें से हम यहाँ 'प्रमाणप्रमेयकलिका' के रचयिता नरेन्द्रसेन का परिचय दे रहे हैं—

प्रस्तुत नरेन्द्रसेन छत्रसेन के पट्टाधिकारी हुए हैं। इन्होंने शक संवत् 1652 ई. में कमलेश्वर (नागपुर) के एक जिन मन्दिर में ज्ञानयंत्र की प्रतिष्ठा कराई थी। नरेन्द्रसेन तर्कशास्त्री विद्वान थे। इनके शिष्य अर्जुनसुत ने इन्हें 'वादिविजेता' और सूर्य के समान तेजस्वी कहा है। नरेन्द्रसेन के पट्टाधिकारी इनके शिष्य शान्तिसेन हुए।

नरेन्द्रसेन का समय विक्रम संवत् 1787 या 1790 है।

रचना-परिचय : नरेन्द्रसेन की एकमात्र रचना उपलब्ध है—

1. प्रमाणप्रमेयकलिका : नरेन्द्रसेन की रचना 'प्रमाणप्रमेयकलिका' न्यायविषयक है। इसमें प्रमाणतत्त्वपरीक्षा और प्रमेयतत्त्वपरीक्षा निबद्ध की गयी हैं। अर्थात् प्रमाण और प्रमेय का वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया है।

यह लघुकाय होते हुए भी न्याय विषय का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

भट्टारक वादिचन्द्र

भट्टारक वादिचन्द्र भट्टारक ज्ञानभूषण द्वितीय के प्रशिष्य और भट्टारक प्रभाचन्द्र के शिष्य थे। यह अपने समय के अच्छे विद्वान, कवि और प्रतिष्ठाचार्य थे।

इनका समय विक्रम संवत् 17वीं शताब्दी है।

रचना-परिचय : भट्टारक वादिचन्द्र द्वारा लिखित निम्न रचनाएँ हैं—

1. पार्श्वपुराण : इस ग्रन्थ में 1500 पद्यों से युक्त पार्श्वनाथ का चरित्र अंकित है। इस ग्रन्थ को कवि ने विक्रम संवत् 1648 कार्तिक सुदी पंचमी के दिन वाल्मीकि नगर में लिखा है।

2. ज्ञानसूर्योदय नाटक : यह एक संस्कृत नाटक है, जो प्रबोधचन्द्रोदय नामक नाटक के उत्तर रूप में लिखा गया है।

3. पवनदूत : यह एक खंड काव्य है, जिसकी पद्य संख्या 101 है। जिस तरह कालिदास के विरही यक्ष ने मेघ के द्वारा अपनी पत्नी के पास सन्देश भेजा है, उसी तरह इसमें उज्जयिनी के राजा विजय ने अपनी प्राणप्रिय तारा के पास, जिसे अशनिवेग नाम का विद्याधर हर ले गया था, पवन को दूत बनाकर विरह सन्देश भेजा है। यह रचना सुन्दर और सरस है।

4. सुभग सुलोचना चरित्र : इस ग्रन्थ की एक प्रति ईडर के शास्त्र भंडार में है। प्रशस्ति से जान पड़ता है कि यह ग्रन्थ संस्कृत में लिखा गया है।

5. श्रीपाल आख्यान : यह एक गीतिकाव्य है जो गुजराती मिश्रित हिन्दी भाषा में है, और जिसे कवि ने संवत् 1651 में लिखा है।

6. पांडव पुराण : इस ग्रन्थ में पांडवों का चरित अंकित किया गया है। इसकी रचना कवि ने विक्रम संवत् 1654 में समाप्त की है।

7. यशोधर चरित : इसमें यशोधर का जीवन-परिचय दिया गया है। कवि ने इस ग्रन्थ को विक्रम संवत् 1657 में रचा है।

भट्टारक विद्याभूषण

जीवन-परिचय : भट्टारक विद्याभूषण विद्वान भट्टारक विश्वसेन सूरि के शिष्य थे। इनका परिचय या नामोल्लेख किसी भी ग्रन्थ में नहीं मिलता है।

इनका समय विक्रम संवत् 17वीं शताब्दी है।

रचना-परिचय : ये संस्कृत और गुजराती भाषा के विद्वान थे। इनकी संस्कृत और हिन्दी गुजराती मिश्रित अनेक रचनाएँ उपलब्ध हैं।

संस्कृत रचना : 1. भविष्यदत्तरास (संवत् 1600), 2. द्वादशानुप्रेक्षा।

हिन्दी, गुजराती-रचना :

1. जम्बूस्वामी चरित्र (संवत् 1653 में हुई), 2. वर्द्धमान चरित्र, 3. बारह सौ चौंतीस विधान, 4. पल्यविधान पूजा (संवत् 1614 में), 5. ऋषिमंडल यन्त्र पूजा, 6. बृहत्कलिकुंड पूजा, 7. सिद्धयन्त्र मन्त्रोद्धार स्तवन-पूजन, 8. नेमीश्वर फाग (251 पद्य)

भट्टारक चन्द्रकीर्ति

जीवन-परिचय : ये भट्टारक विद्याभूषण के प्रशिष्य एवं श्रीभूषण के पट्टधर शिष्य थे। ये ईडर की गद्दी के भट्टारक थे। चन्द्रकीर्ति बहुत ही लब्धप्रतिष्ठ और यशस्वी भट्टारक थे।

इनका समय 17वीं शताब्दी है।

रचना-परिचय : इनके द्वारा लिखित निम्न रचनाएँ हैं—

1. पार्श्वनाथपुराण : इन्होंने संवत् 1654 में देवगिरि पर्वत पर पार्श्वनाथ पुराण की रचना की थी। यह 15 सर्गों में विभक्त है। इनकी कुल श्लोकसंख्या 2715 है।

2. वृषभदेवपुराण : इस पुराण में प्रथम तीर्थंकर वृषभदेव की कथा 25 सर्गों में विभक्त है।

इन ग्रन्थों के साथ इन्होंने कई पूजाएँ भी लिखी हैं। जिनके नाम निम्नलिखित हैं।—

1. पार्श्वनाथ पूजा, 2. नन्दीश्वरपूजा, 3. ज्येष्ठजिनवरपूजा, 4. षोडशकारण पूजा, 5. सरस्वतीपूजा, 6. जिनचौबीसीपूजा, 7. गुरु पूजा।

भट्टारक वीरचन्द्र

जीवन-परिचय : सूरत-शाखा के भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति की परम्परा में लक्ष्मीचन्द्र के शिष्य आचार्य वीरचन्द्र हुए हैं। वीरचन्द्र अत्यन्त प्रतिभा सम्पन्न विद्वान थे। व्याकरण एवं न्यायशास्त्र के प्रकाण्डवेत्ता थे। छन्द, अलंकार, संगीतशास्त्र एवं वाद्यविद्या में भी वे निपुण थे।

भट्टारक वीरचन्द्र की प्रशंसा अनेक विद्धानों ने की है। भट्टारक सुमतिकीर्ति ने भी इन्हें वादियों के लिए अजेय बतलाया है।

प्राकृत पंचसंग्रह टीका में इन्हें यशस्वी, अप्रतिम विद्वान बतलाया है।

आचार्य वीरचन्द्र का कार्यकाल विक्रम सम्वत् की 17वीं शताब्दी सिद्ध होता है।

रचना-परिचय : आचार्य वीरचन्द्र संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी और गुजराती के निष्णात विद्वान थे। इनके द्वारा लिखित आठ रचनाएँ प्राप्त हैं—

1. वीरविलासफाग, 2. जम्बूस्वामीवेलि, 3. जिनान्तर, 4. सीमन्धरस्वामीगीत, 5. सम्बोधसत्ताणु, 6. नेमिनाथरास, 7. चित्तनिरोधकथा, 8. बाहुबलिवेलि।

भट्टारक सुमतिकीर्ति

जीवन परिचय : भट्टारक शुभचन्द्र के शिष्य भट्टारक सुमतिकीर्ति हुए हैं। इन्होंने 'कर्मकांड' और 'प्राकृतपंचसंग्रह' जैसे सिद्धान्त ग्रन्थों की टीका लिखी है। इन टीकाओं से उनके सिद्धान्त विषयक पांडित्य का ज्ञान होता है। ये आचार, दर्शन, कर्मसिद्धान्त, अध्यात्म एवं काव्य के भी निष्णात विद्वान थे।

इनका समय 16वीं 17वीं शताब्दी का मध्यभाग है।

रचना-परिचय : भट्टारक सुमतिकीर्ति ने संस्कृत एवं हिन्दी दोनों भाषाओं में रचनाएँ लिखी हैं।

संस्कृत रचनाएँ :

1. कर्मकाण्डटीका : यह आचार्य नेमिचन्द्र कृत गोम्मटसार कर्मकाण्ड की संस्कृत टीका है जिसकी रचना भट्टारक ज्ञानभूषण की सहायता से की है।

2. प्राकृतपंचसंग्रहटीका : यह प्राकृत-पंचसंग्रह की संस्कृत टीका है।

हिन्दी-रचनाएँ :

1. धर्मपरीक्षारास : इसका उल्लेख पंडित परमानन्द शास्त्री ने अपने प्रशस्ति-संग्रह की भूमिका में किया है। इसका रचनाकाल विक्रम संवत् 1625 है।

2. वसन्तविलास : तीर्थंकर नेमिनाथ के विवाह सन्दर्भ को लेकर रासरूप में इसकी रचना की गयी है। भाषा गुजराती प्रभावित राजस्थानी है।

3. जिह्वादन्तसंवाद : इस लघुकाय रचना में 11 पद्य हैं। इसमें जिह्वा और दाँतों के विवाद द्वारा एकता और समन्वय का सन्देश दिया गया है। भाषा सरल और गुजराती प्रभावित राजस्थानी है।

4. जिनवरस्वामीविनती : इस स्तवन में 23 पद्य हैं। इनमें जिनेन्द्र भगवान की स्तुति वर्णित है। इनमें कवि ने बताया है कि इन्द्रियाँ उसी की सफल हैं, जो प्रभु स्तुति, पूजन, वन्दन और नामस्मरण आदि करता है।

5. शीतलनाथ गीत : इस गीत में शीतलनाथ तीर्थंकर की स्तुति की गयी है। भट्टारक सुमतिकीर्ति द्वारा कुछ अन्य फुटकर पदों में संसार, शरीर और भोगों

के चित्र अंकित किये हैं। इनकी एक अन्य गणित विषयक रचना की सूचना पंडित परमानन्दजी ने दी है जो उत्तर-छत्तीसी नाम की है।

भट्टारक सुमतिकीर्ति ने ग्राम और नगरों में विहार कर धर्मविमुख जनता को धर्म की ओर अग्रसर किया है, मिथ्यावाद में फँसे हुए व्यक्तियों का उद्धार किया है और लोगों को साहित्यसेवा की दृष्टि से जागृत करने का भी अद्‌भुत कार्य किया है।

ब्रह्म ज्ञानसागर

जीवन-परिचय : ब्रह्म ज्ञानसागर श्रीभूषण के प्रधान शिष्य हैं। इनके सम्बन्ध में ज्यादा कुछ ज्ञात नहीं है।

ब्रह्म ज्ञानसागर का समय विक्रम संवत् की 17वीं शती है।

रचना-परिचय : इनके द्वारा रचित निम्नलिखित रचनाएँ प्राप्त हैं—

हिन्दी-रचनाएँ :

1. अक्षरबावनी, 2. नेमिधर्मोपदेश, 3. जिनचौबीसी, 4. द्वादशी कथा, 5. दशलक्षणकथा, 6. राखीबन्धनरास, 7. पल्लवीविधानकथा, 8. निःशल्याष्टमीकथा, 9. श्रुतस्कन्धकथा, 10. मौनएकादशीकथा।

संस्कृत-रचनाएँ :

1. नेमिनाथपूजा, 2. गोम्मटदेवपूजा, 3. पार्श्वनाथपूजा।

भट्टारक वीरचन्द्र

जीवन-परिचय : आचार्य वीरचन्द्र सूरत-शाखा के भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति की परम्परा में हुए श्री लक्ष्मीचन्द्र के शिष्य हुए हैं। वीरचन्द्र अत्यन्त प्रतिभासम्पन्न विद्वान थे। आप व्याकरण एवं न्यायशास्त्र के प्रकांडवेत्ता थे। छन्द, अलंकार एवं संगीतशास्त्र की मर्मज्ञता के साथ वादविद्या में भी निपुण थे। स्वयं साधुजीवन निर्वाह करते हुए गृहस्थों को भी संयमित जीवन यापन करने की शिक्षा देते थे। इन्होंने 16 वर्षों तक नीरस आहार किया था। वीरचन्द्र की विद्वत्ता के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने लिखा है।

भट्टारक वीरचन्द्र का समय विक्रम की 17वीं शताब्दी सिद्ध होता है।

रचना-परिचय : आचार्य वीरचन्द्र संस्कृत, हिन्दी, प्राकृत और गुजराती भाषा के निष्णात विद्वान थे। इनके द्वारा लिखित रचनाएँ निम्न हैं—

1. वीरविलासफाग, 2. जम्बूस्वामीवेलि, 3. जिनान्तर, 4. सीमन्धरस्वामीगीत, 5. सम्बोधसत्ताणु, 6. नेमिनाथरास, 7. चित्तनिरोधकथा, 8. बाहुबलिवेलि।

ये सभी रचनाएँ गुजराती मिश्रित राजस्थानी भाषा में हैं।

भट्टारक सोमसेन

जीवन-परिचय : भट्टारक सोमसेन भट्टारक गुणभद्र के शिष्य थे। भट्टारक सोमसेन के उपदेश से कई स्थानों पर मूर्तियाँ प्रतिष्ठित की गयी थी। सोमसेन अपने समय के प्रभावशाली वक्ता, धर्मोपदेशक और संस्कृति अनुरागी व्यक्ति थे।

सोमसेन का समय विक्रम संवत् की 17वीं शती है।

रचना-परिचय : सोमसेन के द्वारा लिखित निम्नलिखित रचनाएँ हैं—

1. रामपुराण : रामपुराण में रामकथा वर्णित है। इस कथा का आधार आचार्य रविषेण का पद्मचरित है। कथावस्तु 33 अधिकारों में विभक्त है। ग्रन्थ की भाषा और शैली सरल है।

2. शब्दरत्नप्रदीप : शब्दरत्नप्रदीप संस्कृत भाषा का कोश है। इसमें कवि ने शब्दों के अर्थ तो दिये ही हैं, साथ ही उनके प्रकृति, प्रत्यय और लिंगादि भी बताए हैं।

3. धर्मरसिक त्रिवर्णाचार : धर्मरसिक-त्रिवर्णाचार में धर्म, अर्थ और काम-इन तीनों विषयों का वर्णन किया गया है। ।

भट्टारक छत्रसेन

जीवन-परिचय : भट्टारक छत्रसेन सेनगण के भट्टारक समन्तभद्र के शिष्य हैं। इन्हें कवियों ने काव्य, पुराण और आगम का ज्ञाता कहा है। आप काव्य रचयिता होने के साथ वाग्मी और प्रतिष्ठाकारक भी थे।

छत्रसेन का समय विक्रम संवत् की 18वीं शती माना जाता है।

रचना-परिचय : छत्रसेन ने संस्कृत और हिन्दी दोनों ही भाषाओं में रचनाएँ लिखी हैं—

संस्कृत रचनाएँ :

1. पार्श्वनाथपूजा, 2. अनन्तनाथस्तोत्र, 3. पद्मावतीस्तोत्र, 4. मेरूपूजा।

हिन्दी रचनाएँ :

1. द्रौपदीहरण, 2. समवशरणषट्पदी, 3. झूलना, 4. छत्रसेन गुरु आरती।

भट्टारक वर्द्धमान द्वितीय

जीवन-परिचय : भट्टारक वर्द्धमान-द्वितीय भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति के शिष्य थे। ये अपने समय के प्रसिद्ध विद्वान थे। इससे अधिक परिचय इनका ज्ञात नहीं होता है।

रचना-परिचय : वर्द्धमान द्वितीय की एक ही रचना दशभक्त्यादि महाशास्त्र उपलब्ध है, जो संस्कृत में लिखी गयी है।

भट्टारक जिनसागर

जीवन-परिचय : भट्टारक जिनसागर देवेन्द्रकीर्ति के शिष्यों में प्रमुख हैं। इनका विशेष परिचय तो ज्ञात नहीं होता है। संस्कृत एवं हिन्दी दोनों ही भाषाओं में रचनाएँ लिखी हैं—इनका समय विक्रम संवत् 17-18वीं शताब्दी माना गया है।

रचना-परिचय : कवि संस्कृत एवं हिन्दी दोंनो ही भाषाओं के विद्वान हैं। इनकी अधिकांश रचनाएँ हिन्दी में हैं—

1. आदित्यव्रतकथा, 2. निजकथा, 3. पद्मावतीकथा, 4. पुष्पाञ्जलिकथा, 5. लवणांकुशकथा, 6. अनन्तकथा, 7. सुगन्धदशमीकथा, 8. जीवन्धर पुराण, 9. नन्दीश्वरउद्यापन, 10. आदिनाथ स्तोत्र, 11. शान्तिनाथ स्तोत्र, 12. पार्श्वनाथ स्तोत्र, 13. पद्मावती स्तोत्र, 14. क्षेत्रपाल स्तोत्र, 15. ज्येष्ठजिनवरपूजा, 16. शान्तिनाथ आरती।

भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति

जीवन-परिचय : सुरेन्द्रकीर्ति भट्टारक का नाम भट्टारक इन्द्रभूषण के पश्चात् आता है। इन्होंने केसरियाजी क्षेत्र पर दो चैत्यालयों की प्रतिष्ठा की है।

इनका समय विक्रम संवत् की 18वीं शती है।

रचना-परिचय : सुरेन्दकीर्ति की निम्नलिखित रचनाएँ प्राप्त हैं—

1. पद्मावती पूजा, 2. कल्याणमन्दिर छप्पय, 3. एकीभाव छप्पय, 4. विषापहार छप्पय, 5. भूपाल छप्पय।

भट्टारक ललितकीर्ति

जीवन-परिचय : भट्टारक ललितकीर्ति भट्टारक जगतकीर्ति के शिष्य हैं। ये दिल्ली की भट्टारकीय गद्दी के पट्टधर थे। ये बड़े विद्वान और वक्ता थे। मन्त्र-तन्त्र आदि कार्यों में भी निपुण थे। ये अत्यन्त प्रभावक आचार्य थे।

ललितकीर्ति का समय विक्रम संवत् की 19वीं शती निश्चित है।

रचना-परिचय : पंडित परमानन्दजी शास्त्री ने ललितकीर्ति के नाम से निम्नलिखित 25 रचनाओं का निर्देश किया है—

1. महापुराण (आदिपुराण + उत्तरपुराण), 2. सिद्धचक्रपाठ, 3. नन्दीश्वर व्रतकथा, 4. अनन्तव्रत कथा, 5. सुगन्धदशमी कथा, 6. षोडशकारण कथा, 7. रत्नत्रयव्रत कथा, 8. आकाशपञ्चमी कथा, 9. रोहिणीव्रत कथा, 10. धनकलश कथा, 11. निर्दोषसप्तमी कथा, 12. लब्धिविधान कथा, 13. पुरन्दरविधान कथा, 14. कर्मनिर्जराचतुर्दशीव्रत कथा, 15. मुकुटसप्तमी कथा, 16. दशलाक्षणीव्रत कथा, 17. पुष्पाञ्जलिव्रत कथा, 18. ज्येष्ठजिनवर कथा, 19. अक्षयनिधिदशमी व्रत कथा, 20. निःशल्याष्टमी विधान कथा, 21. रक्षाविधान कथा, 22. श्रुतस्कन्ध कथा, 23. कञ्जिकाव्रत कथा, 24. सप्तपरमस्थान कथा, 25. षट्रस कथा।

आचार्य शान्तिसागर (दक्षिण)

जीवन-परिचय : दिगम्बर जैन संस्कृति के महान उद्‌बोधक, सिद्धान्तशास्त्रों के परम रक्षक, उत्कृष्टचर्या के धारक चारित्रचक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर जी ने परम्परागत दिगम्बर मुद्रा को पुनर्जीवित दिया, इसलिए उनको श्रमण तीर्थ से भी पुकारा जाता है। वर्तमान में जो अक्षुण्ण मुनि परम्परा चल रही है, वह उन्हीं की कृपा है।

कर्नाटक प्रान्त के भेजग्राम नगर में भीमगौडा पाटील एवे श्रीमती सत्यवती देवी के 25 जुलाई, 1872 में तृतीय सन्तान के रूप में सातगौडा का जन्म हुआ।

25 जून, 1915 में उतूरग्राम (कर्नाटक) में मुनि श्री देवेन्द्रकीर्ति ने इन्हें क्षुल्लक दीक्षा ही। 2 मार्च, 1920 में यरनाल (कर्नाटक) में मुनि दीक्षा प्रदान की।

8 अक्टूबर 1924 में समडोली में चतुर्विध संघ द्वारा गुरु आज्ञा से आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया। 18 सितम्बर 1955 में कुन्थलगिरि में 36 उपवास की साधना के साथ प्रात:काल की प्रत्यूष बेला में अपने पार्थिव शरीर का त्याग कर देवगति को प्राप्त किया।

आपने अपने दीक्षाकाल के 43 वर्षों में 9938 उपवास किये हैं।

आचार्य शान्तिसागर जी ने 18 मुनिदीक्षा, 11 आर्यिकाएँ-क्षुल्लिकाएँ, 5 क्षुल्लक प्रदान की हैं। आपके शिष्यों में 18 आचार्य हुए हैं।

रचना-परिचय : आपकी प्रेरणा से अनेक ग्रन्थों को मुद्रित किया गया।

षट्‌खण्डागम, कषायपाहुड, धवला-जयधवला आदि सिद्धान्तग्रन्थों के पुनर्प्रकाशन आपकी प्रेरणा से हुए हैं।

डॉ. एस. राधाकृष्णन—भारत के राष्ट्रपति ने अपने उद्‌गार में कहा था—आचार्य श्री शान्तिसागर जी भारत की आत्मा के प्रतीक हैं तथा ऐसे लोग हमारे देश की आत्मा के मूर्तस्वरूप होते हैं।

आचार्य शान्तिसागर (छाणी)

जीवन-परिचय : बालब्रह्मचारी प्रशान्तमूर्ति, उत्तरभारत के प्रथम सन्त श्रमण संस्कृति के कठोर नियम पालन करने वाले, समाज को नई दिशा देने वाले एवं निर्ग्रन्थ मुनि परम्परा को संरक्षित करने वाले आचार्य शान्तिसागर जी महाराज (छाणी) हैं। इन्होंने जैन जगत को एक गौरवशाली शिष्य परम्परा दी है।

आपका जन्म सन् 1888, कार्तिक बदी एकादशी विक्रम संवत् 1945 में छाणी (केसरियाजी के पास) उदयपुर में हुआ। आपका बचपन का नाम केवलदास था। आपके पिता का नाम भागचन्द्र एवं माता का नाम माणिकबाई था।

सन् 1922 में परतापुर बांसवाडा में स्वयं प्रेरणा से ही भगवान के समक्ष क्षुल्लक दीक्षा अंगीकार की और अपना नाम शान्तिसागर घोषित किया।

23 सितम्बर, 1923 में सागवाड़ा (राजस्थान) में 35 वर्ष की उम्र में ही मुनिदीक्षा ग्रहण की। सन् 1926 गिरडीह (बिहार-झारखण्ड) समाज द्वारा आपको आचार्य पद प्रदान किया गया। 17 मई 1944 को सागवाड़ा में मुनिश्री नेमिसागर जी के सान्निध्य में समाधिमरण किया।

विक्रम संवत् 1990 में आचार्य शान्तिसागर दक्षिण एवं आचार्य शान्तिसागर छाणी दोनों के संघों का व्याबर नगर में स्मरणीय तथा अद्‌भुत मिलन हुआ और एक साथ चातुर्मास हुआ। जिसमें समाज को भरपूर धर्म लाभ मिला।

आपके द्वारा दीक्षित 16 मनि हैं, जो सभी बाद में आचार्य बने। आचार्य शान्तिसागर महाराज की परम्परा वर्तमान में भी विद्यमान है।

रचना-परिचय : आचार्य श्री शान्तिसागर जी द्वारा संग्रहीत रचित बहुविध साहित्य उपलब्ध है जो निम्नलिखित है—

1. मूलाराधना, अनेक टीकाओं सहित, 2. श्री शान्तिसागर सिद्धान्त प्रश्नोत्तर माला 3. शान्तिसवैयाशतक 4. आगमदर्पण आदि।

आचार्य ज्ञानसागर

जीवन-परिचय : आचार्य ज्ञानसागर जी का जन्म जयपुर के समीप सीकर जिले के राणोली ग्राम में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री चतुर्भुज एवं माता का नाम श्रीमती घृतवरीदेवी था। इनके बचपन का नाम भूरामल था।

बचपन में ही पितृवियोग एवं आर्थिक परिस्थितियों का सामना करते हुए भी भूरामल को अध्ययन के प्रति तीव्र रुचि थी, फलत: उन्होंने स्याद्वाद महाविद्यालय से संस्कृत साहित्य और जैन दर्शन की उच्च शिक्षा प्राप्त की। विद्याध्ययन के समय से ही संस्कृत में महाकाव्यों की रचना शुरू कर दी।

25 अप्रैल, 1955 में क्षुल्लक दीक्षा एवं 1957 में चूलगिरि (जयपुर) में आचार्य श्री शिवसागर जी द्वारा मुनि दीक्षा प्रदान की गयी। आप पण्डित भूरामल से मुनि ज्ञानसागर हो गये। 7 फरवरी, 1969 नसीराबाद (राजस्थान) में, जैन समाज द्वारा आपको आचार्य पद प्रदान किया गया। 1 जून, 1973 में नसीराबाद में आपकी समाधि हुई।

रचना-परिचय : आपने अपने अपूर्व ज्ञान से विपुल साहित्य संस्कृत और हिन्दी भाषा में लिखा और अनेक अनुवाद एवं टीका भी कीं। यथा—

संस्कृत साहित्य—

1. यशोधरा महाकाव्य
2. वीरोदयकाव्य
3. सुदर्शनोदय
4. भद्रोदय
5. दयोदय चम्पूकाव्य
6. सम्यक्त्वसारशतकम्
7. मुनिमनोरंजन शीति
8. भक्तिसंग्रह
9. हितसम्पादकम्
10. वीरशर्माभ्युदय

हिन्दी साहित्य—

1. भाग्योदय
2. ऋषभचरित
3. गुणसुन्दरवृत्तान्त
4. पवित्र मानव जीवन
5. कर्त्तव्यपथप्रदर्शन
6. सचित्रविवेचन

7. सचित्तविचार
8. स्वामी कुन्दकुन्द और सनातन जैनधर्म
9. सरल जैन विवाह पद्धति
10. इतिहास के पन्ने
11. ऋषि कैसा होता है

अनुवाद एवं टीकाएँ—

1. प्रवचनसार
2. समयसार
3. तत्त्वार्थदीपिका
4. मानवधर्म
5. विवेकोदय
6. देवागमस्तोत्र
7. नियमसार
8. अष्टपाहुड
9. शान्तिनाथपूजनविधान

आचार्य कुन्थुसागर

जीवन-परिचय : आचार्य कुन्थुसागरजी महाराज इस युग के अलौकिक प्रभावशाली और प्रतिभा सम्पन्न आचार्य थे। आप संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान, श्रेष्ठ प्रवचनकार, साहित्यकार, कवि, कुरीतियों के निवारक, क्रान्तिकारी, समाजोद्धारक के रूप में विख्यात हैं।

वीर निर्वाण संवत् 2420 कार्तिक शुक्ल द्वितीया को आपका जन्म हुआ। आपका बचपन का नाम रामचन्द्र था।

28 वर्ष की उम्र में ब्र. रामचन्द्र ने आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज से क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की और चार माह बाद ऐलक दीक्षा ग्रहण की।

35 वर्ष की उम्र में आचार्य से मुनिदीक्षा अंगीकार की। आपका दीक्षा नाम कुन्थुसागर जी रखा गया।

रचना-परिचय : आचार्यश्री ने पूर्वाचार्यों की परम्परा तथा धर्मोपदेशों को स्थायित्व प्रदान करते हुए लगभग चालीस ग्रन्थों का प्रणयन किया। उनमें से प्रमुख हैं—

1. चतुर्विंशतिजिनस्तुति
2. शान्तिसागर चरित्र
3. बोधामृतसार
4. निजात्मविशुद्धि भावना
5. मोक्षमार्ग प्रदीप
6. ज्ञानामृतसार
7. लघुबोधामृतसार
8. स्वरूपदर्शन सूर्य
9. नरेशधर्मदर्पण
10. सुवर्णसूत्र।

आचार्य देशभूषण

जीवन-परिचय : आचार्य देशभूषण जी मुनिराज बहुभाषाविद्, विशिष्ट विद्वान, प्रभावशाली प्रवचनकार, ग्रन्थों के प्रणेता, सफल अनुवादक तथा स्व-पर कल्याण में रत दिगम्बर तपस्वी थे।

इनका जन्म विक्रम संवत 1965 में दक्षिण भारत के बेलगाँव जिले के कोथलपुर ग्राम में हुआ था। कुन्थलगिरि सिद्धक्षेत्र पर इन्हें आचार्य श्री जयकीर्ति से दीक्षा प्राप्त हुई।

आपने अयोध्या नगर में 31 फीट ऊँची 1008 भगवान श्री आदिनाथ की प्रतिमा स्थापित कराई। इनके प्रयासों से ही आज यह क्षेत्र जैन तीर्थ वन्दना में अग्रणीय बना है।

रचना-परिचय : आचार्यश्री द्वारा रचित स्वतन्त्र रचनाएँ हैं—

1. गुरुशिष्यसंवाद, 2. चिन्मयचिन्तामणि, 3. अहिंसा का दिव्य सन्देश, 4. महावीर दिव्य सन्देश।

आपने अनेक ग्रन्थों का हिन्दी, गुजराती, मराठी में अनुवाद भी किया है। यथा—

1. भरतेश वैभव, 2. रत्नाकर शतक, 3. परमात्मप्रकाश, 4. धर्मामृत, 5. निर्बाधलक्ष्मीपतिस्तुति, 6. निरंजनस्तुति, 7. मेरूमन्दरपुराण।

आचार्य सूर्यसागर

जीवन-परिचय : आचार्य सूर्यसागरजी आचार्य श्री शान्तिसागर जी (छाणी) की परम्परा के आचार्य रहे हैं। आप तेरहपन्थ के प्रभावक, उग्र तपस्वी, निर्भीक, स्वतन्त्र विचारक थे।

आपका जन्म विक्रम संवत 1940 में ग्वालियर जिले के शिवपुर के पास पेमसर ग्राम में हुआ। आपका जन्म नाम वि.सं. 1981 को इन्दौर में आचार्य श्री शान्तिसागर जी छाणी से आपको ऐलक दीक्षा प्राप्त हुई और उसके 51 दिन बाद ही मुनि दीक्षा प्राप्त हुई। आप ज्ञान और तपस्या में अग्रणी थे।

रचना-परिचय : आचार्य श्री ने जनकल्याणार्थ अनेक ग्रन्थों की रचना की है। इनमें स्वरचित, संकलित तथा उपदेश रूप से प्रकाशित साहित्य हैं, जो इस प्रकार हैं—

1. श्रावकधर्मप्रकाश—सामान्य और विशेष रूप में
2. संयमप्रकाश
3. अध्यात्मग्रन्थ संग्रह
4. आत्मसाधनमार्तण्ड
5. आत्मसद्बोधमार्तण्ड
6. अभक्ष्यविचारमार्तण्ड
7. सद्बोधमार्तण्ड
8. निर्जरामार्तण्ड
9. निजानन्दमार्तण्ड
10. विवेकमार्तण्ड
11. स्वभावबोधमार्तण्ड
12. प्रबोधमार्तण्ड
13. आर्षमार्गमार्तण्ड
14. आवश्यकमार्तण्ड
15. विधिसंग्रह
16. नित्यपाठ गुटका
17. परमाध्यात्ममार्तण्ड
18. तत्त्वालोकमार्तण्ड
19. स्तोत्रमार्तण्ड
20. प्रभात प्रार्थना
21. सूर्यसागर ग्रन्थावली

आचार्य विद्यानन्द

जीवन-परिचय : जैनधर्म को विश्वधर्म के रूप में प्रस्तुत करने वाले सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्यश्री विद्यानन्दजी से सभी जैन-अजैन समाज गहरी आस्था रखते हैं। आपने जैन धर्म में साथ-साथ अन्य धर्मों के साहित्य, दर्शन, इतिहास, का भी गहन अध्ययन किया है। आपके उपदेश सर्व धर्म से सम्बद्ध होते हैं, परन्तु उनमें गहरा जैन तत्त्वज्ञान गर्भित होता है।

आपका जन्म 22 अप्रैल, 1925 को शेडवाल ग्राम (कर्नाटक) में हुआ। बचपन में आपका नाम सुरेन्द्र कुमार उपाध्ये था।

15 अप्रैल, 1946 में श्री महावीर कीर्ति जी द्वारा कर्नाटक में सुरेन्द्र कुमार ने क्षुल्लक दीक्षा ली। इनका नाम क्षुल्लक पार्श्वकीर्ति हुआ।

25 जुलाई,1963 दिल्ली में आचार्य श्री देशभूषण जी द्वारा क्षुल्लक जी को मुनिदीक्षा दी गयी, नाम हुआ मुनि विद्यानन्द।

1974 में उपाध्याय पद, 1978 में ऐलाचार्य पद, तथा 28 जून, 1987 में आचार्य देशभूषण जी महाराज की आज्ञानुसार आचार्य पद दिया गया।

आप सिद्धान्त चक्रवर्ती, विश्वधर्म प्रणेता, राष्ट्र सन्त, बहुभाषाविद् आदि अनेकों उपाधियों से विभूषित हैं। आचार्यश्री ने प्रत्येक धार्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय कार्यों में अपनी अमिट छाप छोड़ी है।

रचना-परिचय : आचार्यश्री द्वारा रचित कृतियों में प्रमुख कृतियाँ—

1. पिच्छी कमण्डलु, 2. सप्तव्यसन, 3. अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग, 4. तीर्थंकर वर्द्धमान, 5. सोने का पिंजरा, 6. अहिंसा विश्वधर्म, 7. अपरिग्रह से भ्रष्टाचार उन्मूलन, 8. निर्मल आत्मा ही समयसार, 9. अनेकान्त-सप्तभंगी-स्याद्वाद, 10. मन्त्र, मूर्ति और स्वाध्याय, 11. विश्वधर्म की रूपरेखा, 12. अग्नि और जीवत्व शक्ति, 13. 2500वाँ निर्वाण उत्सव कैसे मनाएँ, 14. स्वतन्त्रता, समाजवाद और अनुशासन, 15. धर्मनिरपेक्ष नहीं, सम्प्रदाय निरपेक्ष, 16. मोहनजोदड़ो—जैन

परम्परा और प्रमाण (हिन्दी, मराठी, कन्नड़, अंग्रेजी भाषाओं में अनूदित), 17. कल्याण मुनि और सम्राट सिकन्दर, 18. प्रजातन्त्र के मूलमन्त्र, 19. मूर्ति से मूर्तिमान की पूजा, 20. आर्ष परम्परा में आर्यिका दीक्षा, 21. जैन शासन ध्वज।

आपके ज्ञान में व्यापकता भी बहुत है। आप केवल धर्म, दर्शन, अध्यात्म पर ही नहीं बोलते-लिखते, अपितु व्याकरण, इतिहास, भाषा, पुराण, पुरातत्त्व, राजनीति, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि अनेक विषयों का गूढ़ ज्ञान रखते हैं।

आपने समाज में व्याप्त अनेक समस्याओं को दूर कर समन्वय और एकता का वातावरण बनाने में भी अद्‌भुत योगदान दिया है।

आचार्य विद्यासागर

जीवन-परिचय : इस युग के तपस्वियों की परम्परा में आचार्य श्री विद्यासागर जी अग्रगण्य हैं। वीतराग परमात्मा बनने के मार्ग पर चलने वाले इन पथिक का प्रत्येक क्षण जागरूक व आध्यात्मिक आनन्द से भरपूर है। असाधारण व्यक्तित्व, कोमल, मधुर और ओजस्वी वाणी व प्रबल आध्यात्मिक शक्ति के कारण सभी वर्ग के लोग आपकी ओर आकर्षित हो जाते हैं।

विद्यासागर जी का जन्म कर्नाटक के बेलगाँव जिले के सदलगा गाँव में आश्विन शुक्ल पूर्णिमा (शरद पूर्णिमा) संवत् 2003, 10 अक्टूबर, 1946 में हुआ। श्री मल्लप्पाजी अषगे तथा श्रीमती अषगे के आँगन में जन्मे विद्याधर ने सन् 1967, जयपुर में आचार्य देशभूषण जी से पूर्ण ब्रह्मचर्यव्रत लिया।

30 जून 1972 में लगभग 22 वर्ष की आयु में संयम धर्म के परिपालन हेतु आचार्य ज्ञानसागरजी ने अजमेर (राजस्थान) में मुनि दीक्षा ग्रहण की।

अजमेर में ही 22 नवम्बर, 1972 में आचार्य ज्ञानसागर जी ने विद्यासागर को आचार्य पद प्रदान किया और आचार्य विद्यासागर के सन्मुख मुनि ज्ञानसागर बनकर सल्लेखना ग्रहण कर ली।

आचार्यश्री की प्रेरणा से अनेक परिवार के छः सदस्यों ने भी जैन साधु के योग्य संन्यास ग्रहण किया। आचार्यश्री का संघ वर्तमान में सबसे विशाल है। आपके आचार्यत्व में अब तक 130 मुनिदीक्षा, 172 आर्यिकाएँ, 56 ऐलक, 64 क्षुल्लक, 3 क्षुल्लिकाएँ प्रदान की हैं।

रचना-परिचय : योगी, साधक, चिन्तक, दार्शनिक आदि विविध रूपों में उनका एक रूप कवि भी है। आप अनेक भाषाओं के प्रकाण्ड विद्वान हैं। हिन्दी में आपने दो प्रकार की रचनाएँ की हैं—

प्राचीन आचार्यों की रचनाओं का पद्यात्मक अनुवाद—

1. योगसार, 2. इष्टोपदेश, 3. समाधितन्त्र, 4. एकीभाव स्तोत्र, 5. कल्याणमन्दिर स्तोत्र, 6. पात्रकेसरी स्तोत्र, 7. आत्मानुशासन (गुणोदय),

8. समणसुत्तं (जैन गीता), 9. समयसार (कुन्दकुन्द का कुन्दन) 10. समयसार कलश (निजामृतपान), 11. रत्नकरण्ड श्रावकाचार (रयणमञ्जूषा), 12. स्वयंभूस्तोत्र (समन्तभद्र की भद्रता), 13. द्रव्यसंग्रह, 14. प्रवचनसार, 15. नियमसार, 16. पंचास्तिकाय, 17. नन्दीश्वर भक्ति, 18. गोमटेश अष्टक, 19. अष्टापाहुड, 20. द्वादश-अनुप्रेक्षा, 21. देवागम स्तोत्र आदि का पद्यमय विभिन्न छन्दों में अनुवाद किया है।

स्वतन्त्र रचनाएँ—

1. नर्मदा का नरम कंकर
2. डूबो मत लगाओ डुबकी
3. तोता क्यों रोता
4. मूकमाटी
5. चैतन्य चन्द्रोदय
6. चेतना की गहराई में

आपके मूकमाटी महाकाव्य पर 4 डी.लिट्, 30 पी.एच-डी., 8 एम. फिल, 2 एम.एड. आदि तथा मराठी, अँग्रेजी, बँगला, कन्नड, गुजराती आदि भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। आचार्यश्री का साहित्य विश्वविद्यालयों तक के पाठ्यक्रम में शामिल है।

आचार्य वर्धमानसागर

जीवन-परिचय : बीसवीं शताब्दी के दिगम्बर परम्परा के सर्वश्रेष्ठ आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज की परम्परा के पंचम पट्टाधीश आचार्यश्री वर्धमान सागर जी महाराज धर्म साधना के साथ-साथ समाज में भी समन्वय का सन्देश प्रसारित कर रहे हैं।

आपका जन्म 18 सितम्बर, 1950 में, सनावद (म.प्र.) में हुआ। आपका नाम श्री यशवन्त पोखाड़ रखा गया।

आचार्य श्री धर्मसागर जी ने 24 फरवरी, 1969 में श्री महावीरजी में 18 वर्ष की उम्र में ही आपको मुनि दीक्षा प्रदान की और आपका नाम मुनि वर्धमान सागर जी रखा गया।

24 जून, 1990 में राजस्थान में आचार्य अजितसागर जी द्वारा लिखित आदेशानुसार आपको आचार्य पद प्रदान किया गया।

आचार्य वर्धमानसागर जी महाराज को मुनि दीक्षा के बाद अनेक उपसर्गों का सामना करना पड़ा।

आपके द्वारा दीक्षित 22 मुनि, 22 आर्यिका, 12 क्षुल्लक, 9 क्षुल्लिकाएँ, 1 ऐलक हैं। गोम्मटेश्वर भगवान बाहुबलि के महामस्तिाभिषेक के आयोजन में भी आप कुशलता से सान्निध्य प्रदान करते हैं।

रचना-परिचय : आपकी प्रेरणा से बहुत जैन साहित्य सम्पादित और प्रकाशित हुआ है।

आचार्य सन्मतिसागर

जीवन-परिचय : आचार्य सन्मतिसागर जी का व्यक्तित्व विद्याभूषण, ज्ञानानन्द, स्याद्वादकेसरी, सिंहरथप्रवर्तक, वात्सल्य वारिधि, सिद्धान्त चक्रवर्ती, त्रिलोकतीर्थ धाम आदि अनेक उपाधियों से अलंकृत हैं।

आपका जन्म सुरेश चन्द जैन के यहाँ मोरेना ग्राम में हुआ।

17 फरवरी, 1972 को आपकी क्षुल्लक दीक्षा शिखर जी में हुई। 1988 में आचार्यश्री सुमतिसागर जी द्वारा सोनागिर में आपकी मुनि दीक्षा हुई। दीक्षा के साथ ही पंचम पट्टाचार्य पद भी प्रदान किया गया।

41 वर्षों तक सम्यक्ज्ञान का प्रचार-प्रसार करते हुए आपका समाधिमरण 14 मार्च 2013 को दिल्ली में हुआ।

आत्मसाधना के पूर्व ही आपने जैन-दर्शन, काव्यतीर्थ, आयुर्वेद, ज्योतिष, सिद्धान्त, व्याकरण, हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत शास्त्रों का अध्ययन कर निपुणता प्राप्त की।

आपके द्वारा अर्द्धशताधिक दीक्षाएँ प्रदान की गयी। लगभग 150 से अधिक पंचकल्याणक प्रतिष्ठाएँ करवाईं। अतिशय क्षेत्र बड़ागाँव में अनुपम कृति 'त्रिलोक तीर्थ धाम' का निर्माण आपकी प्रेरणा से सम्पन्न हुआ। अनेकों विशाल प्रतिमाओं, स्याद्वाद गुरुकुल, शताधिक शिक्षण संस्थाओं का निर्माण भी आपकी प्रेरणा से हुआ।

रचना-परिचय : अभी तक 250 से अधिक साहित्यिक कृतियों का सृजन तथा अनेक ऑडियो-वीडियो सीडी के माध्यम से ज्ञान का प्रचार-प्रसार किया गया। आपकी कुछ प्रमुख कृतियाँ निम्न हैं—

1. मुक्तिपथ, 2. कुन्दकुन्द गीता, 3. जिनवाणी (चौबीस तीर्थंकरों की पूजा अर्चना)

आचार्य विरागसागर

जीवन-परिचय : बुन्देलखण्ड के प्रथमाचार्य आचार्यश्री विरागसागर जी का जन्म 2 मई, 1963 में पथरिया (दमोह) में हुआ। श्री अरविन्द कुमार जैन आपका बचपन का नाम है।

20 फरवरी, 1980 में 17 वर्ष में आचार्यश्री सन्मतिसागर से क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की। 9 दिसम्बर 1983, औरंगाबाद में आचार्य विमलसागर जी ने मुनि दीक्षा और 8 नवम्बर 1992 में द्रोणगिरि में आचार्य पद प्रदान किया।

आपने अनेक तीर्थों का जीर्णोद्धार, अहिंसा एवं शाकाहार रैलियाँ आदि अनेक कार्यों में सतत लगे हुए हैं।

आपके द्वारा 61 मुनि, 53 आर्यिका, 6 ऐलक, 32 क्षुल्लक, 4 गणिनी, 6 क्षुल्लिका, 50 ब्रह्मचारी दीक्षित हैं। आपके संघ के अनेक मुनि वर्तमान में आचार्य हैं। यथा—आचार्यश्री विशुद्धसागर जी, विशदसागरजी, विभवसागर जी, विमर्शसागर जी, विहर्षसागर जी, विनिश्चय सागर जी, विमलसागर जी आदि।

रचना-परिचय : आचार्य श्री विरागसागर जी की लगभग 150 पुस्तकें प्रकाशित हैं, जिनमें से प्रमुख निम्न हैं—

बारसाणुवेक्खा एवं रयणसार ग्रन्थ पर संस्कृत टीकाएँ, अनेक शोधात्मक अनुवाद, बालकोपयोगी कथा, अनुवाद गद्य, सम्पादित साहित्य, जीवनी एवं प्रवचन साहित्य।

आचार्य वसुनन्दि

जीवन-परिचय : न्याय, सिद्धान्त, व्याकरण, अध्यात्म के ज्ञाता, अनेक उपाधियों से अलंकृत आचार्यश्री वसुनन्दि जी महाराज का जन्म 3 अक्टूबर 1967 राजस्थान के ग्राम विरोधा में हुआ था। इनका पूर्वनाम श्री दिनेश जैन था।

16 नवम्बर, 1988 में क्षुल्लक दीक्षा, 11 अक्टूबर, 1989 में आचार्य श्री विरागसागरजी से भिंड में मुनिदीक्षा ग्रहण की।

आचार्य श्री विद्यानन्दजी द्वारा 17 फरवरी, 2003 में उपाध्याय पद और 1 अप्रैल, 2009 में आचार्य पद प्रदान किया गया।

आपके द्वारा दीक्षित 15 मुनि, 11 आर्यिका, 9 ऐलक, 14 क्षुल्लक, 1 आर्यिका गणिनी, कुल 55 श्रमण हैं।

रचना-परिचय : आचार्य वसुनन्दिजी मुनिराज ने अध्ययन, लेखन, अध्यापन, ध्यान, लेखन द्वारा लगभग 250 ग्रन्थ लिखे या सम्पादित किये हैं, जिनमें कुछ प्रमुख ग्रन्थ के नाम हैं—

1. वसुनन्दि उवाच, 2. आहारदान, 3. धर्म संस्कार भाग 1 से 4 तक, 4. सर्वोदयी नैतिक धर्म, 5. दशामृत, 6. आहार दान के अचिन्त्य फल।

आपके आशीर्वाद से श्री सत्यार्थी मीडिया पत्रिका (मासिक) श्री श्री सत्यबोध पत्रिका (मासिक) भी प्रकाशित हैं।

आचार्य विमलसागर

जीवन-परिचय : विक्रम संवत् 1948 में मध्यप्रदेश के मण्डला जिले के महिनो ग्राम में किशोरीलाल नामक बालक का जन्म हुआ, जो आगे चलकर आचार्य विमलसागर के नाम से प्रसिद्ध हुए। इनके पिता भीकमचन्द और माता श्रीमती मथुरादेवी थीं।

विक्रम संवत् 1979 में आचार्य श्री विजयसागर जी से क्षुल्लक दीक्षा एवं विक्रम संवत् 2000 में मुनिदीक्षा धारण कर महाव्रती बन गये। गुरुवर ने इन्हें विमलसागर नाम से सम्बोधित किया। 2 अप्रैल, 1973 विक्रम संवत् 2021 में कोटा समाज ने आपको आचार्य पद से सम्मानित किया।

आपके द्वारा दीक्षित 3 मुनि, 2 ऐलक, 1 क्षुल्लक जी हैं।

रचना-परचिय : आचार्य श्री द्वारा संगृहीत, रचित, उपदेश से प्रकाशित साहित्य हैं—

1. श्रावकधर्म, 2. बोधामृतसार, 3. नियमसार, 4. अध्यात्म संग्रह, 5. बनारसीविलास, 6. ब्रह्मविलास, 7. योगसार, 8. लक्ष्मीविलास, 9. आत्मानुशासन, 10. तत्त्वार्थबोध, 11. श्रीपालचरित्र, 12. शान्तिसुखानन्दसिद्धान्त संग्रह, 13. शान्तिशिखरविलास योगी संग्रह, 14. शान्तिशतक सवैया संग्रह, 15. शान्तिधर्मदीक्षा।

इस प्रकार आचार्यश्री ने साहित्य संरचना तथा संकलन द्वारा जहाँ भव्य जीवों को धर्मोपदेश दिया वहाँ साहित्य भण्डार में श्रीवृद्धि भी की।

आचार्य विशुद्धसागर

जीवन-परिचय : उत्कृष्ट क्षयोपशम के धारी होने के साथ-साथ आगम के गूढ़तम रहस्यों के ज्ञाता, जिनवाणी के प्रखर प्रस्तोता और प्रभावी प्रवचनकार के रूप में प्रभावक आचार्य हैं। आप साधना के सजग प्रहरी, अलौकिक व्यक्तित्व एवं कृतित्व के धनी हैं। आप आगमोक्तचर्या के पालक हैं। आप अनेकान्त की तुला पर तौलकर प्रवचन देते हैं। तत्त्वार्थसूत्र, समयसार आदि पर आपके सरस एवं प्रभावशाली प्रवचन होते हैं।

18 दिसम्बर, 1971, भिंड जिले में आपका जन्म हुआ। आपका नाम राजेन्द्र कुमार जैन था। भिंड में 11 अक्टूबर, 1989 में क्षुल्लक दीक्षा, 19 जून, 1991 में पन्ना में ऐकलदीक्षा तथा 21 नवम्बर, 1991 में अतिशय क्षेत्र श्रेयांसगिरि में आचार्य विरागसागर जी द्वारा मुनि दीक्षा हुई।

31 मार्च 2007 औरंगाबाद (महाराष्ट्र) में आचार्य विरागसागर जी द्वारा आपको आचार्य पद प्रदान किया गया। आपने अभी19 मुनिदीक्षाएं प्रदान की है।

रचना-परिचय : आपके द्वारा अनेक ग्रन्थों (लगभग 41) का सृजन किया गया है। यथा-

1. सोलहकारण भावना, 2. देशना बिन्दु, 3. विशुद्धमुक्ति पथ, 4. तत्त्वबोध, 5. आईना, 6. अध्यात्म योगी, 7. विशुद्ध दर्शन, 8. अध्यात्मदेशना, 9. पुरुषार्थदेशना, 10. इष्टोपदेश भाष्य, 11. समाधिशतक अनुशीलन।

आचार्य ज्ञानसागर

जीवन-परिचय : हम एक ऐसे सन्त की चर्चा कर रहे हैं जिन्होंने बचपन में केशलोंच देखते-देखते स्वयं केशलोंच करना आरम्भ कर दिये थे। संस्कारों से परिपूर्ण बालक उमेश के माता-पिता ने शायद ही सोचा होगा कि उनका कुल-दीपक जैन दर्शन व सामाजिक सरोकार का कुशल मार्गदर्शक बनकर पथप्रदर्शक बनेगा।

आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज (छाणी) की पट्ट परम्परा के षष्ठम् पट्टाधीश आचार्य ज्ञानसागर जी जिन्हें सम्पूर्ण जैन जगत सराकोद्धारक के नाम से जानते हैं। दिनांक 1 मई, 1957 को मुरैना (म.प्र.) में श्री शान्तिलाल-अशर्फी देवी जैन के परिवार में जन्मे 'उमेश' ने भगवान महावीर जयन्ती के शुभदिन 31 मार्च, 1988 को सोनगिर सिद्धक्षेत्र में दीक्षा ग्रहण की।

जैन जगत में विद्वानों, डॉक्टरों, वकीलों, शिक्षकों, इंजीनियरों, बैंकर्स, वैज्ञानिक जैन प्रतिभावान विद्यार्थियों, पत्रकारों, प्रशासनिक अधिकारियों सहित हमारे भूले बिसरे सराक श्रावक, भाई जिन्हें हम सभी के प्रिय व समाज के माली से कलेक्टर तक की चिन्ता करने वाले, धार्मिक सूत्र संस्कार प्रदान करने वाले सन्त आचार्य ज्ञानसागर जी हैं।

रचना-परिचय : आचार्य ज्ञानसागरजी ने संस्कृति संरक्षण संस्थान श्रुत संवर्धन संस्थान मेरठ, प्राच्य श्रमण भारती मुजफ्फरनगर, आचार्य शान्तिसागर 'छाणी' ग्रन्थमाला सहित कई संस्थानों में हजारों ग्रन्थों का प्रकाशन करवाकर जिनागम को सुरक्षित करने की महत्त्वपूर्ण प्रेरणा दी है। बहुमूल्य साहित्य को अल्प मूल्य व नि:शुल्क रूप से घर-घर पहुँचाने में आचार्य ज्ञानसागर जी की प्रेरणा अभूतपूर्व है।

आचार्य सुनील सागर

जीवन-परिचय : आचार्य सुनीलसागरजी महाराज आचार्य आदिसागर 'अंकलीकर' परम्परा के चतुर्थ पट्टाधीश हैं और सदैव अपनी आत्मासाधना में दृढ़ रहते हैं।

आपके इस मनुष्य शरीर का जन्म मध्यप्रदेश के सागर जिले के अन्तर्गत तिगोड़ा ग्राम में श्रावक श्रेष्ठी श्री भागचन्द जी जैन धर्मपत्नी श्रीमती मुन्नीदेवी जैन के यहाँ 7 अक्टूबर 1977 को हुआ। आपका नाम सन्दीप जैन रखा गया। 20 अप्रैल, 1997 को 20 वर्ष की अल्पायु में ही आचार्य श्री सन्मति सागर जी मुनिराज द्वारा मुनिदीक्षा प्रदान की गयी। सन्दीप से सुनील सागर जी नाम मिला।

25 जनवरी, 2007 में औरंगाबाद में आचार्य सन्मतिसागर जी द्वारा आपको आचार्य पद प्रदान किया गया। धीर-वीर। गम्भीरता के साथ सरल स्वभावी, मृदुभाषी,अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, बहुभाषाविद्, उत्कृष्ट साधक, मार्मिक प्रवचनकार, आचार्य सुनील सागर जी ने अल्पसमय में ही आचार्य पद प्राप्त किया। आपको समाज द्वारा प्राकृताचार्य, त्रिभाषाकवि, प्राकृत मनीषी आदि अनेक उपाधियों से अलंकृत किया है। आपके संघ में अनेक साधु, 12 आचार्य, 3 उपाध्याय, 6 गणिनी आर्यिकाएँ अपनी साधना में रत हैं।

रचना-परिचय : आपने लगभग 40 ग्रन्थों का प्रणयन किया है।

1. प्राकृत रचनाएँ : 1. भावणासारो, 2. अज्झप्पसारो, 3. णियप्प-झाण सारो, 4. वयणसारो, 5. णीदी संगहो, 6. धुदिसंगहो, 7. भावालोयणा, 8. भद्रबाहु चारथं आदि।

2. हिन्दी-संस्कृत रचनाएँ : विश्व का सूर्य, 2. पथिक, 3. कालजयी कविताएँ, 4. इष्टोपदेश, 5. दूसरा महावीर, 6. अहिंसावतार, 7. जैनाचार विज्ञान, 8. मानवता के आठ सूत्र, 9. धरती का देवता, 10. ब्रह्मचर्य विज्ञान, 11. अनूठा तपस्वी, 12. यात्रा-अन्तर्यात्रा, 13. चिन्तनयात्रा, 14. भक्ति से मुक्ति, 15. अध्यात्म-सार-शतक, 16. सौ कविताएँ, 17. अमरत्व का अमृत, 18. वसुनन्दि श्रावकाचार का हिन्दी अनुवाद।

परिशिष्ट–1
आचार्यानुक्रमणिका

अकलंकदेव	55	गुणचन्द्र	163
अज्जणंदि	78	गुणधर	11
अजितसेन	139	गुणभद्र	69
अनन्तकीर्ति	88	चन्द्रकीर्ति	171
अनन्तवीर्य	74	चिरन्तन	32
अपराजितसूरि	79	छत्रसेन	178
अमरकीर्ति	134	जटासिंहनन्दि	49
अमितगति प्रथम	80	जिनसागर	180
अमितगति द्वितीय	104	जिनसेन हरिवंशपुराण	66
अमृतचन्द्र	81	जिनसेन आदिपुराण	67
अभयचन्द्रासिद्धान्तवर्ती	138	जयसेन प्रथम	131
अभिनवधर्मभूषण	152	जयसेन द्वितीय	133
अर्हद्बली	13	जिनचन्द्र	123
आर्यमंक्षु	40	जिनचन्द्र	154
इन्द्रनन्दि	53	जोइन्दु	44
इन्द्रनन्दि प्रथम	84	तुम्बुलूर	28
उग्रादित्य	72	दिवाकरनन्दि	95
उच्चारण	29	दुर्गदेव	122
उमास्वामी	22	देवनन्दि	37
एलाचार्य	52	देवसेन	90
कनकनन्दि	127	देशभूषण	188
कल्याणकीर्ति	146	धरसेन	14
कार्तिकेय	43	धर्मनीति	166
कार्णभिक्षु	51	नयनन्दि	101
कुन्थुसागर	187	नयसेन	106
कुन्दकुन्द	19	नरेन्द्रसेन	130
कुमारनन्दि	61	नरेन्द्रसेन	168
गणधरकीर्ति	119	नरेन्द्रसेन द्वितीय	110

नेमिचन्द्र 161
नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती 98
पद्मकीर्ति 92
पद्मनन्दि 115
पद्मनन्दि 142
पद्मनन्दि प्रथम 121
पद्मप्रभमलधारी 116
प्रभाचन्द्र 102
पात्रकेसरी 45
पात्रस्वामी 45
पुष्पदन्त भूतबली 17
बालचन्द्र अध्यात्मी 117
ब्रह्मजिनदास 155
ब्रह्मजीवनधर 158
ब्रह्मदेवसूरि 107
ब्रह्मनेमिदत्त 160
ब्रह्मज्ञानसागर 175
भट्टवोसरि 109
भवनकीर्ति 150
भावसेन 136
भास्करनन्दि 141
मल्लिसेन 111
महानन्दि 162
महावीर 73
महासेन 85
माइल्लधवल 120
माघनन्दि सिद्धान्ती 16
माणिक्यनन्दि 100
माधवचन्द्र त्रैविद्य 135
मातुंग 47
यतिवृषभ 41
यशकीर्ति 149
रत्नकीर्ति 165
रविचन्द्र 126
रविषेण 58
रामसिंह 91
रामसेन 83
रामसेन 108
लघु अनन्तवीर्य 131
ललितकीर्ति 182
वट्टकेर 33
वप्पदेव 34
वज्रयश 31
वर्धमान प्रथम 145
वर्धमान द्वितीय 179
वर्धमानसागर 194
वसुनन्दि 198
वसुनन्दि प्रथम 128
वसुनन्दि सैद्धान्तिक 129
वादिचन्द्र 169
वादीराजसूरि 93
वादीभसिंह 62
वावननन्दि 60
विद्यानन्द 190
विद्यानन्द 75
विद्यानन्दि 147
विद्याभूषण 170
विद्यासागर 192
विमलसागर 199
विमलसूरि 30
विरागसागर 197
विशुद्धसागर 200
वीरचन्द्र 172
वीरचन्द्र 176
वीरनन्दि 118
वीरनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती 96
वीरसेन 64
शाकटायन 71

शान्तिसागर दक्षिण 183
शान्तिसागर छाणी 184
शामकुण्ड 59
शिवकोटि 26
शुभकीर्ति 148
शुभचन्द्र 113
शुभचन्द्र 157
श्रीदत्त प्रथम 35
श्रीदत्त द्वितीय 36
श्रीधर 53
श्रीभूषण 167
श्रुतकीर्ति 164
श्रुतमुनि 140
श्रुतसागरसूरि 159
सकलकीर्ति 143
सन्मतिसागर 195
समन्तभद्र 23
सिद्धसेन 27
सुनीलसागर 202
सुमतिदेव 50
सुमितचन्द्र 173
सुरेन्द्रकीर्ति 181
सूर्यसागर 189
सोमकीर्ति 151
सोमदेवसूरि 86
सोमसेन 177
हरिषेण 89
हस्तिमल 124
ज्ञानभूषण 153
ज्ञानसागर 185
ज्ञानसागर 201

परिशिष्ट – 2
ग्रन्थानुक्रमणिका

अंजनापवनंजय	124	उत्तरपुराण	69
अनन्तव्रत कथा	142	उपासकाध्ययन	128
अध्यात्माष्टक	95	ऋषभनाथ की धूलि	151
अध्यात्मतरंगिणी	87	ऋषभदेव पुराण	171
अमृताशीति	44	एकीभाव स्तोत्र	94
अर्धकाण्ड	122	कन्नड व्याकरण	106
अंजनाचरित्र	150	कथा कोश	89
अलंकार चिन्तामणि	139	कर्मकाण्ड टीका	173
अष्टपाहुड	21	कर्मप्रकृति	138
अष्टशती देवागमविवृत्ति	57	कल्याणमंदिर	27
अष्टसहस्री	76	कषायपाहुड	11
आचारवृत्ति	129	कातंत्ररूपमाला	137
आचारसार	96,118	कामचाण्डाली कल्प	112
आत्मख्याति	82	कार्तिकेयानुप्रेक्षा टीका	157
आयज्ञान तिलक	109	केवलीभुक्ति प्रकरण	71
आत्मानुशासन	70	गन्धहस्ति महाभाष्य	25
आप्तपरीक्षा	76	गद्यचिंतामणि	63
आप्तमीमांसा	25	गणितसार	54
आप्तमीमांसावृत्ति	129	गणितसार संग्रह	73
आराधना	105	गुर्वावलि	151
आराधनासार समुच्चय	126	गोमट्टसार	98
आराधनासार	90	चन्द्रप्रभचरित्र	97
आलापपद्धति	90	चूडामणि	28, 63
आदिपुराण	68, 69,125	जम्बूस्वामी रास	150
आदीश्वर फाग	153	जल्पनिर्णय	36
आस्रव त्रिभंगी	140	जन्माभिषेक	39
आत्मसंबोधन	153	जयधवला	65, 68
इष्टोपदेश	39	जलगालनरास	153

जल्पनिर्णय 36
ज्वालामालिनी 84
ज्वालिनी कल्प 112
ज्योतिर्ज्ञान विधि 54
जिनचतुर्विंशति 154
जिनरात्रिकथा 149
जिनवर स्वामी विनती 173
जिनदत्त चरित 70
जिनशतक 25
जिनशतक टीका 129
जिनेन्द्र व्याकरण 39
जिह्वादन्त संवाद 173
जीरापल्ली पार्श्वनाथ 142
जीवतत्त्व प्रदीपिका 161
जीवन्धर रास 150
जीवसिद्धि 25
जम्बुद्वीपपण्णत्ती 121
तत्त्वप्रदीपिका 82
तत्त्वभावना 105
तत्त्वसार 90
तत्त्वानुशासन 25,83,108
तत्त्वार्थसूत्र सुखबोधटीका 141
तत्त्वज्ञान तरंगिणी 153
तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक 77
तत्त्वार्थवार्तिक 57
तत्त्वार्थसार 82
तत्त्वार्थसूत्र 22
तात्पर्यवृत्ति 133
दर्शनसार 90
दसभक्ति 39
द्रव्यसंग्रह टीका 107
द्रव्यस्वभावप्रकाशक नयचक्र 119
देवागम स्तोत्र 25
दोहापाहुड 91
द्वादश अनुप्रेक्षा 43
द्वादशांग पूजा 167
धम्मरसायण 121
धर्मामृत 106
धर्म परीक्षा 104,164
धर्मरत्नाकर 132
धर्मरसिक त्रिवर्णाचार 177
धवला 65
ध्यान विधि 119
नन्नू लू 60
नागकुमार 111
निजात्माष्टक 44
नियमसार 21
नियमसार टीका 116
नीतिवाक्यामृत 86
नेमिणाह चरिउ 134
नेमिनाथ चरित 133
न्याय दीपिका 152
न्यायवाद 61
न्यायविनिश्चयसवृत्ति 57
पउमचरिउ 30
पद्धतिरूप टीका 59
पद्मचरित्र 58,85
पद्मनन्दि पंचविंशतिका 115
पद्मपुराण 58,166
परमागम सार 140
परमात्मप्रकाश 44
परमात्मप्रकाशवृत्ति 106
पंचसंग्रह 104
पंचास्तिकाय 21
पंचास्तिकाय टीका 82
पत्र परीक्षा 76
परमेष्ठी प्रकाश 164
परीक्षामुख 99

पवनपुत्र 169
पाण्डव पुराण 149,169
पार्श्वनाथ चरित्र 93
पार्श्वपुराण 169,171
पार्श्वाभ्युदय 66
पार्श्वनाथ स्तोत्र 116
पासणाहचरिय 92
पाहुड दोहा 91,162
पात्रकेसरी स्तोत्र 46
पुरन्दरविधान कथा 134
पुरुषार्थसिद्ध्युपाय 80
पूजाष्टक 153
पूजाशतक 153
पोसहरास 153
प्रतिबोध चिन्तामणि 167
प्रतिष्ठादीपक 130
प्रतिष्ठासार 128
प्रद्युम्नचरित्र 85
प्रमाणनिर्णय 94
प्रमाणपरीक्षा 76
प्रमाणप्रमेयकलिका 110,168
प्रमाणप्रमेय 137
प्रमाणसंग्रह सवृत्ति 57,74
प्रमाणसंग्रह भाष्य 74
प्रमेयकमल मार्तण्ड 101
प्राकृत पंचसंग्रह 173
प्रमेयरत्नमाला 130
प्रवचनसार 20
प्रवचनसार टीका 82, 116
बारस अणुवेक्खा 21
बीजगणित 54
भैरव पद्धति 111
भक्तामर स्तोत्र 59
पद्मचरित्र 58,85
पद्मनन्दि पंचविंशतिका 115
पद्मपुराण 58,166, 48
भगवती आराधना 26
भयहर स्तोत्र 48
भद्रबाहुचरित्र 165
भाव त्रिभंगी 140
भावना पद्धति 142
भावना बत्तीसी 105
भाव संग्रह 90
भैरवपद्मावती कल्प 112
मंद प्रबोधिका 138
मन्त्र महोदधि 122
मरण कण्डिका 121
महापुराण 111
मूलाचार 33
मैथिली कल्याण 124
भविष्यदत्त रास 170
यशस्तिलक चम्पू 87
यशोधर चरित्र 94,151,169
यशोधर रास 151
युक्त्यनुशासनांलकार 76
युक्त्यनुशासन 25
योगसार 44,164
योगसार प्राभृत 80
योनिपाहुड 15
रचनापुराण 166
रत्नकरण्ड 25
रविव्रत कथा 149
रामपुराण 177
रिष्ट समुच्चय 122
लब्धिसार 99
लघीयस्त्रय 57
लघुनयचक्र 90
वरांगचरित्र 49,145

वर्धमान चरित्र 142
वसन्तविलास 173
वसुनन्दिश्रावकाचार 127
विक्रान्त कौरव 124
विजयोदया 79
विद्यानन्द महोदय 76
विश्वतत्त्वप्रकाश 135
विस्तरसत्त्वत्रिभंगी 127
वृत्तिबोध चिन्तामणि 167
व्याख्याप्रज्ञप्ति टीका 34
शब्दानुशासन 71
शब्दरत्नप्रदीप 177
शीतलनाथ गीत 173
शांतिनाथ चरित्र 145,148
शांतिनाथ पुराण 167
शृंगार मञ्जरी 139
श्रावकाचार सार 142
श्रीपाल आख्यान 169
श्रीपुरपार्श्वनाथस्तोत्र 76
श्रुतावतार 53
सकलविधि विधान 101
सन्मतिसूत्र 27
सन्मति टीका 50
सप्तव्यसन कथा 151
सत्यशासनपरीक्षा 76
समयप्राभृत 21
समयसार 21
समयसार टीका 82,116
समाधितंत्र 38
सरस्वती मन्त्र कल्प 112
सर्वज्ञसिद्धि 88
सर्वार्थसिद्धि 38
सिद्धान्तसार 123,154
सिद्धान्तसार संग्रह 130
सुदर्शन चरित्र 101,147
सिद्धिविनिश्चय 57,74
सिद्धिप्रिय स्तोत्र 39
सुभगसुलोचना चरित्र 169
सुभद्रा नाटिका 125
सुभाषितरत्नसन्दोह 104
सुमति शतक 50
स्तुति विद्या 25
स्याद्वादसिद्धि 62
स्वयंभूस्तोत्र 24
स्त्रीमुक्ति प्रकरण 71
हरिवंश पुराण 66,149,164
क्षपणासार 99, 135
क्षत्रचूडामणि 63
त्रिलोक प्रज्ञप्ति 41
त्रिलक्षणकदर्थन 46
त्रिलोकसार 97
त्रिंशतिका 54
त्रेपन क्रियागीत 151
ज्ञानार्णव 114
ज्ञाननिधि 119
ज्ञानसूर्योदय नाटक 169